युु. एस. ए. के न्यूजर्सी, शिकागो में तथा कनाडा में एवं लंदन में पूज्य बापू के जीवनोद्धारक सत्संग से लाभान्वित होते हुए सर्व जाति के भक्तगण ।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ६

अंक : ३३

९ सितम्बर १९९५

सम्पादक : के. आर. पटेल

मूल्य : छः रूपये

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में

वार्षिक	: द्विमासिक संस्करण हेतु	:	रू. 30/-
	मासिक संस्करण हेतु	:	रू. 40/-
आजीवन	: द्विमासिक संस्करण हेतु	:	रू. 300/-
	मासिक संस्करण हेतु	:	रू. 400/-

विदेशों में

वार्षिक	: द्विमासिक संस्करण हेतु	:	US $ 18
	मासिक संस्करण हेतु	:	US $ 24
आजीवन	: द्विमासिक संस्करण हेतु	:	US $ 180
	मासिक संस्करण हेतु	:	US $ 240

कार्यालय

'ऋषि प्रसाद'

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

संत श्री आसारामजी आश्रम

साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५

फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : के. आर. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा,
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५ ने
विनय प्रिन्टींग प्रेस, मीठाखली एवं भार्गवी प्रिन्टर्स,
राणीप, अहमदाबाद में छपाकर प्रकाशित किया।

इस अंक में...

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

चलें अथक अविराम...

चलें अथक अविराम ओ साधक ! हम चलें अथक अविराम ।
मुश्किल कितनी भी आ जावे पर करें न हम विश्राम ।
हम चलें अथक अविराम ॥
जन्म अनेकों पाकर भी हमने ज्ञान न उसका पाया ।
तुच्छ विकारों और विषयों में उलझा दी थी काया ।
जीवन धन्य उसीका जिसने आत्मतत्त्व प्रकटाया ।
इससे पहले कि जीवन की ढल जाए कहीं शाम ।
हम चलें अथक अविराम ॥
सफल उसीका जीवन जिसने परमात्म-लक्ष्य को प्राप्त किया ।
लाख तितिक्षा सहकर भी जो शांत और समभाव जिया ।
गिर पड़ा पथ में अगर तो फिर से चलने का यत्न किया ।
जीना उसीका जीना है जो माने जीवन को संग्राम ।
हम चलें अथक अविराम ॥
अवरोधों की बाढ़ हटा हमें तूफानों से टकराना है ।
दया, धर्म व त्याग, शील का पाठ हमें अपनाना है ।
आज मरे कल दिन दूजा फिर परसों किसने जाना है ।
कर्म करो कुछ ऐसे साधक स्व में पाएँ आराम ।
हम चलें अथक अविराम ॥
दिव्यज्ञान को दिव्य धरा के घर-घर में पहुँचाओ तुम ।
भारत के कोने-कोने में धर्मध्वजा फहराओ तुम ।
सूरज बन चमको जग में और ज्ञान रश्मि फैलाओ तुम ॥
छोड़ चिन्ता और फिकर फेंक जब संग हो सद्गुरु का नाम ।
चलें अथक अविराम ओ साधक ! हम चलें अथक अविराम ॥

- अश्विन शर्मा,
अमझेरा (म.प्र.)

मिलता है तुम्हारा प्यार मुझे

जीवन की रुलाती घड़ियों में,
मिलता है तुम्हारा प्यार मुझे ।
कुछ चाह नहीं रहती बाकी,
प्रभु आके तेरे दरबार मुझे ।
मेरे दिल के गगन में आके कभी,
जब गम की घटा छा जाती है ।
पल भर में कहीं से दया तेरी,
तब बन के हवा आ जाती है ।
तुम रक्षा सबकी करते हो,
फिर क्यों हो भला इन्कार मुझे ।
जीवन की रुलाती घड़ियों में,
मिलता है तुम्हारा प्यार मुझे ।
तेरे दर से गुरु मैं क्या माँगूँ,
बिन माँगे ही सब मिलता है ।
मुर्झाया फूल इस जीवन का,
तेरी ही कृपा से खिलता है ।
जो इच्छा तेरी है दाता,
हरदम वही है स्वीकार मुझे ।
जीवन की रुलाती घड़ियों में,
मिलता है तुम्हारा प्यार मुझे ।
जब तक मैं रहूँ इस दुनिया में,
बस एक ही यह अरमान रहे ।
प्रभु ! दिल में तुम्हारी याद रहे,
होंठों पर तुम्हारा नाम रहे ।
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में,
चाहे जन्म मिले सौ बार मुझे ।
जीवन की रुलाती घड़ियों में,
मिलता है तुम्हारा प्यार मुझे ।

- हरगोविन्दसिंह बहातंशी
'साहित्य भूषण'
लार्डगंज (कछियाना), जबलपुर ।

समाहित चित्त

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥

'जिसने अपने-आप पर विजय कर ली है, उस शीत-उष्ण (अनुकूलता-प्रतिकूलता), सुख-दुःख तथा मान-अपमान में प्रशान्त, निर्विकार मनुष्य को परमात्मा नित्य प्राप्त है।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : ६. ७)

सर्दी-गर्मी त्वचा द्वारा जान सकते हैं। केवल सर्दी-गर्मी सहन कर लें ऐसे तो अनगिनत लोग हैं लेकिन भगवान के कहने का तात्पर्य यह है कि कैसे भी सुख-दुःख आवें, उनमें हमारा चित्त सम और शांत रहेगा तो यह स्थिर चित्त परमात्मा का अनुभव कर सकेगा।

जो छोटे-बड़े सुखों में आसक्त नहीं होता और दुःखों से प्रभावित नहीं होता, उसका चित्त सम रहता है, उसके लिये परमात्मा नित्यप्राप्त है।

जैसे आईना हिल रहा हो तो चेहरा स्पष्ट नहीं दिखता लेकिन आईना स्थिर हो तो चेहरा स्पष्ट दिखता है। बिल्लोरी काँच हिलता हो तो वह सूर्य की दाहक शक्ति पैदा नहीं कर सकता लेकिन स्थिर रहने पर वह गर्मी व दाहक शक्ति पैदा कर सकता है। ऐसे ही जो छोटे-बड़े सुखों में आसक्त नहीं होता और दुःखों से प्रभावित नहीं होता, उसका चित्त सम रहता है उसके लिये परमात्मा नित्यप्राप्त है।

मनुष्य यदि पुरुषार्थ करके सुख-दुःख का साक्षी बन जाय तो वह अपने-आप पर विजय पा सकता है।

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।

जो मान के प्रसंग में बहके नहीं और अपमान के समय घबराये नहीं, उसका चित्त सम रहता है। मान और अपमान, सुख और दुःख हमारे चित्त को आकर्षित करने के लिये आते हैं। यह तो प्रकृति का स्वभाव है।

प्रकृति ने गरमी बनाई, मनुष्य ने पंखा, फ्रीज, कूलर, एयरकंडीशनर बनाये। प्रकृति ने आँधी-तूफान बनाये तो मनुष्य ने मकान-दुकान बनाये। प्रकृति ने बरसात बनाई तो मनुष्य ने छाता व रेनकोट बनाये। प्रकृति ने बन्धन बनाये तो मनुष्य ने मुक्ति ढूँढ निकाली। प्रकृति ने जन्म-मरण बनाये तो गुरु ने मोक्ष के द्वार खोल दिये। इस प्रकार सुख-दुःख तो आते-जाते हैं लेकिन मनुष्य यदि पुरुषार्थ करके सुख-दुःख का साक्षी बन जाय तो वह अपने-आप पर विजय पा सकता है।

सुख-दुःख की घड़ियाँ जीवन में,
आती हैं चली जाती हैं।
ज्ञानी उनमें फँसता नहीं
और अज्ञानी को वे रुलाती हैं॥

हमें अपने चित्त को विचलित नहीं करना है, अपितु 'ईश्वर जो करते हैं... वह ठीक ही करते हैं। वाह प्रभु ! अच्छा हुआ....' - ऐसा सोचकर चित्त को सम रखना है।

इसी प्रकार से चित्त को सम रखनेवाला एक राज्य का मंत्री था। प्रत्येक घटना पर 'भला हुआ... अच्छा हुआ...' कहना उसका स्वभाव था।

एक दिन वहाँ के राजा को किसीने तलवार भेंट दी। राजा उस तलवार की धार को हाथ घुमाकर देखने लगा तो एक

अंगुली कट गई और खून निकलने लगा। राजा कहता है कि : ''अररर... मेरी अंगुली कट गई !''

मंत्री की नजर पड़ी तो स्वभाववश उसके मुख से निकल पड़ा : ''भला हुआ... अच्छा हुआ...।''

राजा के अहं को चोट लगी। वह क्रोध से तिलमिला उठा : ''मेरी अंगुली कट गई है और यह 'भला हुआ, अच्छा हुआ' कहता है ! ऐसे मंत्री को जेल में डाल दिया जाय।'' आदेश जारी कर दिया।

> ***हमारे जीवन में कोई मुसीबत आती है तो अपने भले के लिये ही आती है। परमात्मा प्राणीमात्र का सुहृद है, वह कभी किसीका अहित नहीं करता है।***

लेकिन मंत्री के चित्त में समता का सद्गुण विकसित हुआ था। वह जाता था किसी ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु के चरणों में और पचाई थी उनकी करुणा-कृपा, उनके वचनों को उसने अपने जीवन की गहराई में उतारा था इसलिये वह तनिक भी चिन्तित नहीं हुआ अपितु प्रसन्न होकर कहने लगा : ''भला हुआ... अच्छा हुआ...। भगवान जो भी करते हैं, अच्छे और भले के लिये ही करते हैं।''

मंत्री जेल में डाल दिया गया। दिन बीतते गये। एक दिन राजा जंगल में शिकार करने गया। उसने वहाँ एक सुन्दर हिरण देखा और उसके पीछे घोड़ा दौड़ाया। हिरण लुका-छिपी खेलते हुए वन में कहीं अदृश्य हो गया और राजा रास्ता भूलकर जंगल में भटकने लगा। भटकते-भटकते संध्या हो गई लेकिन रास्ता न मिला।

> ***जीवन में आनेवाले सुख और दुःखो के प्रसंग में हम परमात्मा को धन्यवाद दें तो हमारा दिल चैतन्य आत्मा में शांत होने लगता है।***

उधर जंगली लोगों के मुखिया को पुत्रेष्टि यज्ञ करना था जिसमें किसी मनुष्य के बलि की आवश्यकता थी। जंगली लोग बलि के लिये मनुष्य की खोज करते-करते जंगल में भटककर अनाथ व लाचार, थके हुए जंगली आदमी के समान लगते राजा को पकड़ अपने मुखिया के पास ले गये। पुत्रेष्टि यज्ञ में उसका सिर बलि चढ़ाने के लिये उसे स्नान कराया, हार पहनाया, मिठाई खिलाई और वधस्थल की ओर लाया गया।

पुरोहित कहता है :

''तुम जिस आदमी को पकड़कर लाये हो, उसका कोई अंग-भंग तो नहीं है ? देख लो। अंग-भंग होगा तो हमारा यज्ञ असफल होगा।''

जंगली लोगों ने देखा तो उसके हाथ की अंगुली कटी हुई निकली। उन्होंने 'धत्तेरी... खंडित मिला' कहकर थप्पड़ मारकर राजा को भगा दिया।

राजा को तुरन्त याद आया कि यदि मेरी अंगुली कटी हुई न होती तो आज मेरा सिर ही कट जाता। जो हुआ अच्छा हुआ... भला हुआ...। उसे मंत्री की बात तुरन्त समझ में आ गई। उसने अपने राजदरबार में आकर हुक्म किया : ''मंत्रीजी को वस्त्रालंकार से सुशोभित कर शीघ्र ही मेरे पास लाओ।''

मंत्री को राजदरबार में लाया गया। राजा कहता है : ''मंत्रीजी ! 'अच्छा हुआ... भला हुआ...' की तुम्हारी बात अब मेरी समझ में आई।''

यह कहकर राजा ने विस्तार से सारी घटना मंत्री को बताई। फिर पूछा : ''लेकिन मुझे यह समझ में नहीं आया कि जब मैंने तुम्हें हथकड़ी पहनाकर जेल में डालने का आदेश दिया था तब भी तुम्हारे चित्त में तनिक भी उद्वेग नहीं हुआ था। तब भी तुमने यही कहा था -'अच्छा हुआ... भला हुआ...'- उसका क्या आशय था ?''

मंत्री कहता है : ''राजन् ! मैं आपका निजी मंत्री हूँ। आप जंगल में हिरण के पीछे-पीछे दौड़ते तो मैं भी आपके साथ ही रहता इसलिये दोनों रास्ता

भूलते और दोनों ही साथ में पकड़े जाते। इसलिये आपको तो अंग-भंग होने के कारण छोड़ दिया जाता और मेरा सिर बलिवेदी पर होम दिया जाता। आपने मुझे जेल में डाल दिया तो मैं बच गया। शूली की जगह जेल के रूप में केवल काँटा ही लगा।''

जो भरोसा ईश्वर पर करना चाहिये, वह भरोसा यदि पुत्र, परिवार या अन्य किसी पर किया तो अन्त में वह रुलाता ही है।

मंत्री के स्पष्टीकरण से राजा को ज्ञान हुआ कि हमारे जीवन में कोई मुसीबत आती है तो अपने भले के लिये ही आती है। परमात्मा प्राणीमात्र का सुहृदय है, वह कभी किसीका अहित नहीं करता है।

न खुशी अच्छी है, न मलाल अच्छा है।
यार जिसमें रख दे, वह हाल अच्छा है॥
हमारी न आरजू है, न जुस्तजू है।
हम राजी हैं उसमें, जिसमें तेरी रजा है॥

इस प्रकार जीवन में आनेवाले सुख और दुःखों के प्रसंग में हम परमात्मा को धन्यवाद दें तो हमारा दिल चैतन्य आत्मा में शांत होने लगता है।

एक माई रोती हुई अपने गुरुजी के पास आई और कहने लगी : ''बापूजी ! मुझे बेटा नहीं है।''

गुरुजी ने कहा : ''बड़दादा की मिट्टी ले जा तो तेरे यहाँ बेटा जन्मेगा।''

बेटा आएगा तो बाद में वह कहेगी कि यह पढ़ता नहीं है। पढ़ेगा तो कहेगी शादी नहीं होती। शादी हुई तो सोचेगी बहू को लड़का आए तो अच्छा।

जिसने अपना मन जीत लिया है, उसके लिये संसार का सुख-दुःख कुछ भी मूल्य नहीं रखता।

बेटा नहीं है तो भी चिन्ता, बेटा पढ़ता नहीं है तो भी चिन्ता, बेटे के घर बेटा नहीं है तो भी चिन्ता... और कभी बेटा अचानक मर जाए तब भी माँ को कितना दुःख होता है !

मोह सकल व्याधिन कर मूला।
ताते उपजे पुनिभव शूला॥

भगवान ने बेटा दिया है तो ठीक है और बेटा नहीं दिया है तो भी आँसू बहाने की जरूरत नहीं है। उन्हें सोचना चाहिये कि भगवान की मर्जी हमें अकेला रखने की होगी ताकि हम भगवान का भजन कर सकें। उन पति-पत्नी पर ईश्वर की कृपा है, भगवान ने जवाबदारी नहीं दी है तो भगवान का भजन होगा, सत्संग में जायेंगे और दूसरों को भी ले जाएँगे। यह ईश्वर की कितनी अधिक अनुकम्पा है !

यदि भगवान ने बेटा दिया है तो उनका प्रसाद है और उन्हीं की सेवा-आराधना करेगा ऐसा सोचो।

बेटा बड़ा होगा और सुख देगा ऐसी आशा रखकर जो बच्चों का पालन-पोषण करते हैं वे अन्त में बहुत दुःखी होते हैं क्योंकि जो भरोसा ईश्वर पर करना चाहिये, वह भरोसा यदि पुत्र, परिवार या अन्य किसी पर किया तो अन्त में वह रुलाता ही है।

'अमुक वस्तु या व्यक्ति मिलेंगे तब आराम से भजन करेंगे और सुखी हो जाएँगे...।' नहीं... तुम अभी ही सुखी होने की कला ढूँढ लो। 'संसार के संयोगजन्य सुख और दुःख आये और गये... उसको देखनेवाला मेरा आत्मा-परमात्मा ही सत्य है... वाह ! मेरे प्रभु !! तेरी जय हो....!

हे प्रभु ! तू अपमान करके हमारा अहं दूर करता है और सम्मान देकर उत्साह बढ़ाता है। हमें मित्र देकर विषाद दूर करता है और शत्रु देकर हमारा अहं दूर करता है। विषाद और अहंकार हमारे मन के विकार हैं। हे निर्विकार नारायण ! मैं और तू एक ही हैं।'

भगवान की जात और हमारी जात एक ही है। तुम्हारी कौन-सी जात है ? कोई कहेंगे कि हमारी जात देसाई है लेकिन देसाई, बनिया, पटेल, चौधरी यह सब शरीर की नात-जात है। उस कुल में हमारा शरीर पैदा हुआ है लेकिन हम और ईश्वर एक ही हैं।

जो मन के खेल में अटक जाता है वह खिलाड़ी को नहीं पहचान सकता और जो मन के खेल को खेल समझता है, जो खेल खेलते हुए भी खिलाड़ी पर नजर रखता है, उसका बेड़ा पार हो जाता है।

जिसने अपना मन जीत लिया है, संसाररूपी खेल में भले सुख-दुःख आये फिर भी जिसका मन चलित नहीं होता, जिसने ध्यान-धारणा करके भगवान की कृपा पचा ली है, उसके लिये संसार का सुख-दुःख कुछ भी मूल्य नहीं रखता।

जिन महापुरुषों की प्रीति आत्मा में ही है ऐसे आत्मनिष्ठ पुरुष जिन वस्तुओं को छू लेते हैं, वे प्रसाद हो जाती हैं।

हमारे मन में अनेकों बार सुख-दुःख आये, मान-अपमान आये, चिन्ता-भय आये और ईश्वर के प्रति भाव भी आये लेकिन इन सबको देखनेवाला जो एक का एक है, उसको जो देखता है वह निहाल हो जाता है।

यह भी देख, वह भी देख, देखत-देखत ऐसा देख।
मिट जाये धोखा, रह जाये एक ॥

उसी एक परमात्मदेव की सत्ता से हमारी आँख देखती है, कान सुनते हैं। उसी चेतना से हमारे माता-पिता भाई-बहन की आँखें देखती हैं। वह चेतना एक की एक है। आँख-कान अनेक हैं, लेकिन उसके द्वारा देखनेवाला मेरा परमात्मा एक का एक है।

सब घट मेरा साँइया, खाली घट ना कोई।
बलिहारी वा घट की, जा घट प्रगट होई ॥
कबीरा कुआँ एक है, पनिहारिनी अनेक।
न्यारे-न्यारे बर्तनों में, पानी एक का एक ॥

जिन महापुरुषों की प्रीति आत्मा में ही है, ऐसे महापुरुषों के कदम जहाँ पड़ते हैं, वे स्थान तीर्थ हो जाते हैं। आत्मनिष्ठ पुरुष जिन वस्तुओं को छू लेते हैं, वे प्रसाद हो जाती हैं। जिसने एक क्षण के लिये अपने मन को ब्रह्म-परमात्मा में स्थित कर लिया, उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया, उसने सब यज्ञ कर लिये, सब तप सिद्ध कर लिये, सब प्रकार के दान कर लिये।

मिल जाए कहीं ऐसे आत्ममस्ती में रमण करनेवाले महापुरुष तो अपनी श्रद्धा व भक्ति उनके चरणों में अर्पित कर वह कला अवश्य ही सीख लेना जिससे सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलताएँ आपके चित्त को आकर्षित या विचलित न कर सकें। आपका चित्त सम और शान्त रहे।

सदैव सम और प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।

'एतत् सर्वं गुरोर्भक्त्या...'

वेदव्यासजी ने श्रीमद्भागवत में कहा है :

काम को जीतना है तो बीमार शरीर को देखो अथवा मन ही मन चमड़ा हटाकर देह को देखो कि शरीर में क्या भरा है। लोभ को जीतना है तो दान करो। अहंकार को जीतना है तो जिस बात का अहंकार है, धन का, सत्ता का, सौन्दर्य का, उनसे सम्पन्न बड़ों को देखो। मोह को जीतना है तो श्मशान में जाओ और देखो। एक-एक दोष को जीतने के लिये वेदव्यासजी ने अलग-अलग उपाय बताये हैं और अन्त में यह भी कहा है कि इन सब दोषों को एक साथ ही जीतना हो तो सद्गुरु में भक्तिभाव कर दो।

एतत् सर्वं गुरोर्भक्त्या... एतत् सर्वं गुरोर्भक्त्या

सब विघ्न हटाना और आत्मरस पाना... अगर सबका एक ही इलाज पूछते हो तो वह है - गुरुभक्ति।

दिव्य गुरु के चरणकमलों का ध्यान करने के लिए ब्रह्ममुहूर्त सबसे ज्यादा अनुकूल समय है। चालू व्यवहार में भी कभी-कभी गुरु का ध्यान करके आप शक्ति, स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त करते रहो।

- स्वामी शिवानंदजी

संस्कृति दर्शन

दिलरुबा दिल की सुनाऊँ, सुननेवाला कौन है ?
जाम-ए-हक्क भर-भर पिलाऊँ, पीनेवाला कौन है ?

कोई दाम दीवाना, कोई चाम दीवाना, कोई पद-प्रतिष्ठा का दीवाना तो कोई सौन्दर्य का दीवाना है। दाम के, चामके, पद-प्रतिष्ठा के, सौन्दर्य के दीवाने बनो लेकिन भीतर से समझ लो कि वह अन्तर्यामी दिल में बैठा है इसलिये यह सब अच्छा लगता है । तुम एक बार उस हरिरस की प्यालियाँ पीकर तो देखो...! कितना मस्त नशा है उसका...! एक बार चढ़ गया तो फिर प्रभुमस्ती का आनन्द देकर ही जाता है।

> ***ऐहिक विद्या केवल बुद्धि तक ही सीमित है लेकिन आध्यात्मिक विद्या तो अपने आत्मा तक पहुँचती है।***

इस अमरपद की प्यालियाँ परीक्षित ने शुकदेवजी के चरणों में बैठकर पी थी और राजा जनक ने अष्टावक्र के चरणों में बैठकर पी थी । अनेक सुप्रसिद्ध महापुरुष उस आत्मविद्या की प्यालियाँ पीकर अमरपद को प्राप्त हो गये।

शिक्षा हमें ऐहिक ज्ञान प्रदान करती है लेकिन ऐहिक ज्ञान से केवल नश्वर शरीर का ही पालन-पोषण होता है क्योंकि यह अपूर्ण ज्ञान है। हम यदि आई. ए. एस. आफिसर बन जावें तो आई. ए. एस. की विद्या का ज्ञान तो हमें होगा, लेकिन डॉक्टर की विद्या का अज्ञान रहेगा । हम यदि डॉक्टर हो गये तो आई. ए. एस. की विद्या का अज्ञान रहेगा। क्योंकि ऐहिक विद्या केवल बुद्धि तक ही सीमित है लेकिन आध्यात्मिक विद्या तो अपने आत्मा तक पहुँचती है। इसीलिये आध्यात्मिक विद्या की आवश्यकता है।

हमने सुना है कि अष्टावक्र पूर्वजन्म के योगी थे, ध्रुव पूर्वजन्म के योगी थे, मीरा भगवान श्रीकृष्ण की गोपियों में से एक, भगवान की भक्त थी। पूर्वजन्म के योगियों और भक्तों का तो बहुत सुना है लेकिन यह कभी सुनने में नहीं आया कि यह पूर्वजन्म का M.B.B.S. या Ph. D. है। नये जन्म में सभी को A, B, C, D से ही शुरूआत करनी पड़ती है लेकिन आध्यात्मिक विद्या में ऐसा नहीं है । जिन्होंने आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया वे तो मुक्त हो गये लेकिन जिनकी साधना अधूरी रह गई है, उनकी अगले जन्म में वहीं से ही साधना शुरू होगी जहाँ से साधना छूटी थी। यह विद्या दूसरे जन्म में भी हमारे काम आती है इसीलिये इसे अमर विद्या कहते हैं । इस पर मौत का भी प्रभाव नहीं पड़ता । यह अमरविद्या भारत के गाँव-गाँव में दिखती है।

कनाडा का एक करोड़पति संसार के ऐहिक तथा भौतिक भोगों से परेशान होकर जीवन का सूरज ढल जाए उसके पहले ज्ञान के सूर्योदय की अभिलाषा रखकर भारतीय संत का सेवक बन गया। उसने वृन्दावन की महिमा सुनी तथा भगवान राम के नाम का श्रवण किया। उसकी श्रद्धा व प्रीति इतनी दृढ़ हो गई कि ध्यान का अभ्यास करते-करते उसके भीतर से स्वतः ही 'राम-राम' व 'हरि-हरि' का उच्चारण होने लगा।

जिस पर सम्प्रेक्षण शक्ति का प्रभाव होता है, जिसके ऊपर संतों की कृपा बरसती है, उसकी सुषुप्त कुंडलिनी शक्ति जागृत हो जाती है। कुंडलिनी के जागरण से स्वतः ही प्रभु का नाम प्रस्फुटित होने लगता है, शरीर तथा चित्त के दोष दूर होने लगते हैं।

रक्त के कण एवं मन तथा हृदय भी शुद्ध होने लगते हैं। इसीलिये कहा जाता है :

गुरुजी ! तुम तसल्ली न दो,
सिर्फ बैठे ही रहो।
महफिल का रंग बदल जाएगा,
गिरता हुआ दिल भी संभल जाएगा॥

जिन्होंने ईश्वर का चिन्तन कर हरिरस का आस्वादन कर लिया है उनकी नजरों से भी पवित्रता बरसती है । आज के वैज्ञानिकों ने भी घोषणा की है कि जो सज्जन व्यक्ति हैं, जिनका ईश्वर के साथ मिलाप हो गया है उनके शरीर के आसपास विशिष्ट प्रकार का आभामंडल व्याप्त रहता है जो उनके सम्पर्क में आनेवालों को भी हृदय की शीतलता एवं ईश्वरीय आनन्द की मस्ती से सराबोर कर देता है । उनकी दृष्टिमात्र से हमारे एक घन मिलीमीटर रक्त में १६०० श्वेतकण तैयार हो जाते हैं जो हमारी आरोग्यता की रक्षा करते हैं । लेकिन जो घृणित एवं हिंसक कार्यों में लिप्त रहते हैं, क्रोधी एवं अशांत रहते हैं, जिनके हृदय में क्रूरता है, ऐसे व्यक्तियों की दृष्टि पड़ते ही हमारे प्रत्येक घन मि.मी. रक्त के १५०० जितने श्वेतकण नष्ट हो जाते हैं। घृणित और हिंसक व्यक्ति की दृष्टि पड़ती है तो हमारे रक्त में इतने विकार उत्पन्न होते हैं लेकिन जब सज्जन अथवा संत व्यक्ति की नज़र पड़ती है तब हमारे रक्त में पवित्रता आती है। जिनकी दृष्टिमात्र से हममें पवित्रता आ जाती है तो उन संतों के अपने मन तथा बुद्धि में कितनी पवित्रता होती होगी ?

जिनका ईश्वर के साथ मिलाप हो गया है उनके शरीर के आसपास विशिष्ट प्रकार का आभामंडल व्याप्त रहता है जो उनके सम्पर्क में आनेवालों को भी हृदय की शीतलता एवं ईश्वरीय आनन्द की मस्ती से सराबोर कर देता है।

भारत में वैदिक युग की यह परम्परा थी कि कोई अस्वस्थ रहता तो सज्जन लोग उससे मिलने जाते थे अथवा रोगी स्वयं सज्जनों एवं संत पुरुषों के दर्शन करने जाते थे। सज्जन व्यक्तियों के परमाणु तथा संकल्प रोगियों को ठीक कर देते थे । चीर-फाड़ व ऑपरेशन उस युग में नहीं थे फिर भी लोग सुखी व स्वस्थ जीवन जीते थे।

भारत में वैदिक युग की यह परम्परा थी कि कोई अस्वस्थ रहता तो सज्जन लोग उससे मिलने जाते थे अथवा रोगी स्वयं सज्जनों एवं संत पुरुषों के दर्शन करने जाते थे। सज्जन व्यक्तियो के परमाणु तथा संकल्प रोगियो को ठीक कर देते थे।

भगवान आत्रेय चरक संहिता में कहते हैं :

भक्त्या मातुः पितुश्चैव
गुरूणां पूजनेन च।
ब्रह्मचर्येण तपसा
सत्येन नियमेन च॥
जपहोमप्रदानेन वेदानां श्रवणेन च।
ज्वरादिविमुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च॥

माता, पिता तथा सद्गुरुदेव की भक्ति अथवा पूजन से, ब्रह्मचर्य एवं सत्य के पालन से, तप, जप, होम, प्रायश्चित, उत्तम दान से, वेदों का श्रवण करने से, सत्संग सुनने तथा साधु पुरुष के दर्शन से ज्वर आदि अनेक रोग शीघ्र दूर होते हैं।

टेलिफोन का एक छोटा-सा उपकरण जिसमें केवल दस नंबर ही होते हैं लेकिन वह यदि टेलिफोन एक्सचेंज से जुड़ जाय तो घर बैठे अमेरिका बात कर सकते हैं। नम्बर घुमाने की तकनीक हो तो टेलिफोन का वह डिब्बा आपको विश्व के किसी भी व्यक्ति के साथ बात करा सकता है । इसी प्रकार हमारे हृदय

की डिब्बी छोटी है लेकिन गुरु हमें उससे नम्बर मिलाने की युक्ति सिखा दें तो हम विश्वेश्वर के साथ भी बात कर सकते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। जिसे सन्देह हो वहअनुभव कर सकता है।

इन्सान के लिए वह हर कार्य सम्भव है जो उसके पहले कोई दूसरा इन्सान कर चुका है। असम्भव कुछ भी नहीं है लेकिन दुःख की बात तो यह है कि विदेशों में सैकड़ों डालर खर्च करके, ध्यान की शिविरें भरकर लोग इस आत्मविद्या का अनुभव करना चाहते हैं लेकिन भारत का जवान हजारों रूपये तो क्या, समय तक भी नहीं खर्च कर सकता। आज का जवान संतों के चरणों में बैठकर ध्यान की कला सीख ले तो कितना अच्छा होगा...! 'मरते हैं एक दूजे के लिये' कहकर आत्महत्या कर सकते हैं तो भगवान के लिये अपने अहं को मारकर, अपने पाप को मारकर कीर्तन-ध्यान में तन्मय होने लगें तो कितना सौभाग्य होगा... !

इन्सान के लिए वह हर कार्य सम्भव है जो उसके पहले कोई दूसरा इन्सान कर चुका है। असम्भव कुछ भी नहीं है।

जो लोग शराब पीकर, अंडे खाकर ऐहिक विद्या की रिसर्च (खोज) करते हैं उनकी पुस्तकें पढ़ने का समय कालेज के विद्यार्थियों के पास है लेकिन महावीर, बुद्ध, अष्टावक्र, पतंजलि आदि महापुरुषों ने कन्दमूल खाकर अथवा वायु पीकर जीवन के जिस सत्य की खोज की तथा समाज के हित के लिये जिन्होंने तप किया, न दिन देखा न रात देखी, अपने रक्त को पानी बना डाला, ऐसे महापुरुषों ने जो शास्त्र बनाये, भारत के जवान के पास उन शास्त्रों के अध्ययन के लिये समय नहीं है। कितने दुर्भाग्य की बात है ! योगवाशिष्ठ महारामायण एवं अष्टावक्रगीता पढ़ने के लिये समय नहीं है। गीता के तत्त्वचिन्तन का समय नहीं है। कितनी पतन की निशानी है...!

जो लोग आमलेट खाकर रिसर्च करते हैं, हम उनकी पुस्तकें खरीदते हैं, पढ़ते हैं लेकिन जिन ऋषियों ने हमारा उद्धार हो जाय ऐसे उपनिषदों की रचना की उनके ज्ञान से हम दूर होते जा रहे हैं।

जो लोग आमलेट खाकर रिसर्च करते हैं, हम उनकी लाखों रूपयों की पुस्तकें खरीदते हैं, पढ़ते हैं लेकिन जिन ऋषियों ने हमारा यह लोक व परलोक भी सुधर जाए, पड़ोसी भी आनंद से नाच उठे तथा हमारे २१ कुल का उद्धार हो जाय ऐसे उपनिषदों की रचना की उनके ज्ञान से हम दूर होते जा रहे हैं।

जर्मनी व जापान ने हमारे शास्त्रों का गहन अध्ययन, मनन, चिन्तन कर इस ज्ञान के क्षेत्र में प्रगति की इसीलिये ऐहिक जगत में भी उनकी प्रगति हो रही है। उनकी प्रगति का कारण है भारत के वेदों और उपनिषदों को उनके द्वारा अपनाया जाना लेकिन बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हम अपने ही देश में अपनी पावन संस्कृति के उच्चादर्शों को भूलते जा रहे हैं, शीर्ष रीते-आचार-परम्पराओं का त्याग करते जा रहे हैं। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित लोग धार्मिक लोगों व गुरुओं का मजाक उड़ाने में अपना बड़प्पन मान रहे हैं और अशांति, दुराचार, शराब, कबाब, 'पत्नी बदल प्रोग्राम' जैसे घृणित कृत्यों में संलग्न रहकर अशांति की आग में झुलसते जा रहे हैं। तनावों व अशांति में झुलसते समाज को शांति देनेवाले धर्म, ध्यान, धारणा, कीर्तन व संतों से विमुख करके पतन के गर्त की ओर ले जा रहे हैं।

एक उदाहरण देखिये : शिखा (चोटी) रखने के हमारी संस्कृति के पावन संस्कार की महत्ता को स्वीकारते हुए पाश्चात्य जगत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक नेलसन ने अपनी पुस्तक 'ह्यूमन मशीन' में लिखा है : ''मानव शरीर में सतर्कता के सारे कार्यक्रमों का संचालन सिर पर शिखा रखने के स्थान से होता है। आसपास के

वातावरण, जलवायु आदि में आनेवाले तनिकसे भी परिवर्तन को समझने का, ग्रहण करने का, एवं परिवर्तन के अनुसार समायोजन का कार्य शिखास्थल से ही होता है।''

अतीन्द्रिय ज्ञान, ध्यान द्वारा आकाश में मौजूद सूक्ष्म शक्तियों के आकर्षण का मूल बिन्दु भी शिखा-स्थल ही है। प्रसिद्ध नेलसन कहते हैं : '' जिस प्रकार एरियर अथवा एन्टिना रेडियो एवं टी. वी. के संदेश ग्रहण करता है उसी प्रकार ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म शक्तियों को ग्रहण करने का कार्य शिखा-स्थान द्वारा ही होता है।''

संत हरिदास महाराजा रणजीतसिंह की उपस्थिति में जब एक माह की समाधि लगाकर बाहर निकले तो वैज्ञानिकों ने उनकी जाँच करते समय पाया कि उनकी चोटीवाले स्थल का तापमान इतना अधिक था कि उसे छुआ भी नहीं जा सकता था। इससे उन्होंने पता लगाया कि समाधि अवस्था में श्वास लेने का और शरीर के कोषों की उत्सर्जन क्रिया रोककर उन्हें यथावत् रखने का काम तक इसी स्थान द्वारा किया जा सकता है।

योग की भाषा में इसे सहस्रार केन्द्र भी कहा जाता है जो शरीर के सप्त चक्रों का अंतिम बिन्दु होता है। इस केन्द्र को जितना अधिक सुसंस्कारित एवं विकसित कर सकते हैं, उतना ही हम संसार के रहस्यों, आत्मा के रहस्यों एवं भूत-भविष्य की घटनाओं की सत्य जानकारी का स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं। हमारे ऋषि-मुनि इसी शिखास्थान की सहायता से भविष्य में झाँक सकने में समर्थ होते थे। वैज्ञानिकों ने परीक्षण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि मस्तिष्क का यह भाग सूक्ष्म आँख का काम करता है।

दुर्भाग्य की बात है कि हम विदेशी सभ्यता के आकर्षण के जाल में फँस चुके हैं। हमने इस आध्यात्मिकता के केंद्र बिन्दु को गँवारों की, अशिक्षितों की एवं संकुचित मानसिकता की निशानी मानकर फैशन के प्रभाव में इसके महत्त्व को ही भुला दिया और उनसे प्रभावित हो गये, जो मांसलता व मादकता की धुन पर थिरकते हुए नग्न नृत्यों की ओर उन्मुख होकर, आसुरी खुराक- शराब, कबाब आदि का सेवन करते हुए स्वार्थ परायणता में इतने लिप्त हैं कि अपने माँ-बाप तक को नहीं संभाल सकते - इतने भोग व अशांति की आग में पच रहे हैं।

पाश्चात्य देशों में प्रत्येक नौ महिलाओं में से एक स्तन कैंसर एवं प्रति तेरह महिलाओं में से एक गर्भाशय कैंसर के रोग से पीड़ित है। वहाँ प्रत्येक २० मिनट में एक व्यक्ति अशांत होकर आत्महत्या कर रहा है तथा हर आधे घंटे में एक आदमी अशांत होकर पागल हो रहा है। हम ऐसे लोगों के 'कल्चर' से प्रभावित होकर उनका अनुसरण कर रहे हैं और भूल गये हैं अपने प्राचीन जीवन को। यदि भारत में पुनः स्वस्थ तन, प्रसन्न मन, संयुक्त व दीर्घ जीवन, एवं सामाजिक सुव्यवस्था लाना है व आत्मिक शक्ति जगाना है तो यथाशीघ्र संयम, नियम, शास्त्र व संतों का मार्गदर्शन लेकर पुनः हमारे भीतर अपनी संस्कृति के पावन संस्कारों एवं ऋषि-मुनियों तथा हमारे पुरखों की गौरवशाली आध्यात्मिक परम्पराओं का बीजारोपण करना होगा। तभी भारत के युवाओं की

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

यदि भारत में पुनः स्वस्थ तन, प्रसन्न मन, संयुक्त व दीर्घ जीवन एवं सामाजिक सुव्यवस्था लाना है व आत्मिक शक्ति जगाना है तो यथाशीघ्र संयम, नियम, शास्त्र व संतों का मार्गदर्शन लेकर पुनः हमारे भीतर अपनी संस्कृति के पावन संस्कारों एवं ऋषि-मुनियों तथा हमारे पुरखों की गौरवशाली आध्यात्मिक परम्पराओं का बीजारोपण करना होगा।

गंगा पापं शशि तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं तापं च दैन्यं च घ्नन्ति सन्तो महाशयाः ॥

गंगा पाप मिटाती है, चन्द्रमा ताप दूर करता है और कल्पवृक्ष दरिद्रता दूर करता है किन्तु जो संतपुरुष हैं, आत्मारामी महापुरुष हैं, उनके चरणों में श्रद्धा रखने से, उनके दर्शन एवं सत्संग से पाप, ताप और हृदय की दरिद्रता तीनों एक साथ दूर हो जाते हैं । इसीलिये संतों का संग करने को कहा है । संतों के चरणों में ज्ञान मिलता है और सत्संग से दिव्य आत्मज्ञान मिलता है ।

'हे उद्धव ! सत्संग जिस प्रकार मुझे वश कर लेता है, वैसा साधन न योग है, न सांख्य, न धर्मपालन और न स्वाध्याय ।'

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध के बारहवें अध्याय में उद्धव को सत्संग की महिमा बताते हुए कहा है :

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ॥

'हे उद्धव ! जगत में जितनी आसक्तियाँ हैं, उन्हें सत्संग नष्ट कर देता है । यही कारण है कि सत्संग जिस प्रकार मुझे वश कर लेता है, वैसा साधन न योग है, न सांख्य, न धर्मपालन और न स्वाध्याय । तपस्या, त्याग, इष्टापूर्त और दक्षिणा से भी मैं वैसा प्रसन्न नहीं होता । कहाँ तक कहूँ - व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ और यम-नियम भी सत्संग के समान मुझे वश में करने में समर्थ नहीं हैं ।'
(श्रीमद्भागवत : ११. १२. १, २.)

कपिलमुनि अपनी माता देवहुति से कहते हैं :

प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥

'विवेकीजन संग या आसक्ति को ही आत्मा का अच्छेद्य बन्धन मानते हैं, किन्तु वही संग या आसक्ति जब संतों-महापुरुषों के प्रति हो जाती है, तो मोक्ष का खुला द्वार बन जाती है ।' (श्रीमद्भागवत : ३. २५.२०.)

विवेकीजन संग या आसक्ति को ही आत्मा का अच्छेद्य बन्धन मानते हैं, किन्तु वही संग या आसक्ति जब संतों-महापुरुषों के प्रति हो जाती है, तो मोक्ष का खुला व्दार बन जाती है ।

इसी शृंखला में कपिलजी माता देवहुति से कहते हैं : '' सत्पुरुषों के समागम से मेरे पराक्रमों का यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानों को प्रिय लगनेवाली कथाएँ होती हैं । उनका सेवन करने से शीघ्र ही मोक्षमार्ग में श्रद्धा, प्रेम और भक्ति का विकास होगा ।

योगवाशिष्ठ के मुमुक्षु प्रकरण में सत्संग की महिमा का वर्णन करते हुए वशिष्ठजी अपने प्यारे शिष्य श्रीराम से कहते हैं :

विशेषेण महाबुद्धे संसारोत्तरणे नृणाम् ।
सर्वत्रोपकरोतीह साधुः साधुसमागमः ॥

'हे महाबुद्धिमान् राम ! इस संसार में श्रेष्ठ संत-समागम मनुष्यों को संसार-सागर से उबारने में सर्वत्र विशेषरूप से उपकार करता है ।'

'हे राम ! जो महात्मा पुरुष सत्संगरूपी वृक्ष से उत्पन्न हुए विवेक नामक निर्मल पुष्प की रक्षा करते हैं, वे मोक्षफलरूपी सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं । सत्संग बुद्धिवर्धक, अज्ञानान्धकार का नाशक तथा मानसिक व्यथाओं को दूर

भगानेवाला है व परब्रह्म परमात्मा से एक करनेवाला है।

सत्संग बुद्धिवर्धक, अज्ञान-अन्धकार का नाशक तथा मानसिक व्यथाओं को दूर भगानेवाला है व परब्रह्म परमात्मा से एक करनेवाला है।

जो रागशून्य और संशयरहित हैं तथा जिनकी चिज्जड़ ग्रन्थियाँ विनष्ट हो चुकी हैं, ऐसे संत पुरुष यदि लोक में विद्यमान हैं तो तप एवं तीर्थों के संग्रह से क्या लाभ ? अर्थात् वह फल तो उन संतों की संगति से ही प्राप्त हो सकता है। इसलिये जिनकी चिज्जड़ ग्रन्थियों का विनाश हो गया है एवं जो ब्रह्मज्ञानी हैं, उन सर्वसम्मत संतों की सेवा सभी उपायों द्वारा भलीभाँति करनी चाहिये। वे भवसागर से पार होने के लिये साधन हैं। जो लोग नरकाग्नि को बुझाने वाले मेघस्वरूप संतों को अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं, वे स्वयं उस नरकाग्नि की सूखी लकड़ी बन जाते हैं।

जो लोग नरकाग्नि को बुझाने वाले मेघस्वरूप संतों को अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं, वे स्वयं उस नरकाग्नि की सूखी लकड़ी बन जाते हैं।

भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं : '' जो प्राणीमात्र के हितैषी हैं ऐसे आत्मवेत्ता संतों के संग से जो मिलता है, वह दूसरे किसीके संग से नहीं मिलता।''

भगवान शिवजी पार्वती से कहते हैं :

गिरिजा संत समागम सम, और न लाभ कछु आन।
बिनु हरिकृपा उपजे नहिं, गावहिं वेद पुरान ॥

कबीरजी कहते हैं :

सुख देवे दुःख को हरे, करे पाप का अन्त।
कह कबीर वे कब मिले, परम सनेही सन्त ॥

'हे प्रभु ! जिन्हें मिलने से हमें सुख प्राप्त हो, दुःख चला जाय और पापों का अन्त हो जाय, ऐसे परम स्नेही अर्थात् जिन्हें परमात्मा के साथ स्नेह है, ऐसे संत हमें कब मिलेंगे ?

जिसके जीवन में सत्संग है वही हकीकत में जिन्दगी काटता है, बाकी बेचारों को तो जिन्दगी काटती रहती है।

हे मेरे भाग्य विधाता ! हे तकदीर ! तू हमारे एक-दो जोड़ी कपड़े कम करना चाहे तो कर देना, रूपये-पैसे कम करना हो तो कर देना लेकिन हमारे जीवन में से संतों का संग और उनके प्रति हमारी श्रद्धा कभी कम मत करना। वे अभागे लोग हैं जो समाज को संतों से तोड़ते हैं। संतों से समाज को तोड़कर वे कौन-सी शांति, ज्ञान, ध्यान समाज को देंगे ? ज्ञान, ध्यान व संतों के संग के बिना तो समाज अनाथ हो जाएगा।

संतों का संग और सत्संग ही जीवन का सच्चा धन है। आँख की पलकें तेरह बार झपकें अर्थात् तेरह निमेष ब्रह्मविद्या का श्रवण करके हमारा मन शान्त होवे तो राजसूय यज्ञ करने का फल मिलता है। आँख की सत्रह पलकें गिरें, इतने समय ब्रह्मविद्या सुनकर हमारा मन शांत होवे तो वाजपेय यज्ञ करने का फल मिलता है। आधा घंटा यदि आत्मज्ञान का सत्संग सुनकर मन शांत होवे तो अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है।

जिन संतों के दर्शन करने से संसारी लोग पवित्र होते हैं, जिनके वचन सुनने से लोगों के पाप-ताप दूर हो जाते हैं, वे संत अन्तर्यामी परमात्मा का ध्यान करके खुद भी पवित्र होते हैं तथा दूसरों को भी पवित्र करते हैं। ऐसे संतपुरुषों के सत्संग से हृदय की दरिद्रता, पाप-ताप और चित्त के दोष निवृत्त होते हैं। इसीलिये कहा भी है :

सत्संग की आधी घड़ी,
सुमिरन बरस पचास।
बरखा बरसे एक घड़ी,
अरहट फिरे बारों मास ॥

हमने हजारों साल जप-

तप-व्रत और तीर्थयात्रा की हो फिर भी सत्संगरूपी ज्ञानगंगा में स्नान करने से जो पुण्यलाभ होता है, वह तो कुछ निराला ही होता है ।

स्वर्ग का अमृत पीने से पुण्यनाश होता है जबकि कथामृत का पान करने से पापनाश होता है ।

मनुष्य से अधिक सामर्थ्य देवताओं में है फिर भी जब शुकदेवजी महाराज ने परीक्षित राजा को सत्संग का अमृतपान कराने का संकल्प किया तब देवता आकर शुकदेवजी से प्रार्थना करते हैं :

''हे ज्ञानवान् ! हे परमहंस !! हे आत्म-साक्षात्कारी शुकदेवजी महाराज ! हम आपको प्रणाम करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि आप जिस भागवत कथा का अमृतपान परीक्षित को करानेवाले हैं उस भागवत कथा का पान हमको कराने की कृपा करें। उसके बदले में हम परीक्षित को स्वर्ग का अमृतपान कराएँगे।

''तुम काँच का टुकड़ा देकर कोहिनूर लेने आये हो । तुमको कथा का अमृत नहीं मिल सकेगा । तुम वापस जाओ ।''

शुकदेवजी कहते हैं : ''हे देवताओं ! स्वर्ग का अमृत पीने से पुण्यनाश होता है जबकि कथामृत का पान करने से पापनाश होता है। स्वर्ग का अमृत पीने से अहंकार जगता है, माता के गर्भ में उल्टे होकर लटकने का दुर्भाग्य चालू रहता है जबकि भगवत्कथामृत का पान करने से अहंकार दूर होता है, जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा मिलता है, हृदय में परमात्मा का रस प्रगट होता है, परमात्मा की प्राप्ति होती है। तुम काँच का टुकड़ा देकर कोहिनूर लेने आये हो । तुमको कथा का अमृत नहीं मिल सकेगा। तुम वापस जाओ। '' ऐसा कहकर शुकदेवजी ने स्वर्ग के देवताओं को वापस लौटा दिया।

जिसके जीवन में सत्संग है वही हकीकत में जिन्दगी काटता है बाकी बेचारों को तो जिन्दगी काटती रहती है । जिसके जीवन में सत्संग है वह खुशनसीब है। सत्संग से समझ का पूर्ण विकास होता है, मनुष्य के मन में आत्मज्ञान पाने की उत्कंठा जगती है तथा अपने सत्य स्वरूप को पहचानने की जिज्ञासा होती है। हमारे सत्य स्वरूप की जानकारी देते हुए श्री भोलेबाबा कहते हैं :

**मानव तुझे नहीं याद क्या,
तू ब्रह्म का ही अंश है।
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है, सद्ब्रह्म तेरा वंश है।
संसार तेरा घर नहीं, दो चार दिन रहना यहाँ ।
कर याद अपने राज्य की, स्वराज्य निष्कंटक जहाँ ॥**

हे मानव ! तू अपने आत्मराज्य की याद कर, भीतर के खजाने की याद कर। तेरे पास असीम शक्ति है। तू अपने को तुच्छ समझकर निराशा की खाई में फेंक मत । भूतकाल को याद करके चिन्ता मत कर और वर्तमान में दुःखी, अशांत मत हो।

हम वर्तमान में यदि सावधान होकर जियें, संतों के सान्निध्य का महत्त्व समझें, सत्संग के वचनों को आदर सहित जीवन में उतारें तो जीवन की शाम होने के पहले हमारे भीतर आत्मानन्दरूपी पुष्प की महक विकसित हो सकती है । जीवन का सूर्य अस्त होने से पहले जीवनदाता का अनुभव कर सकते हैं।

अपनी वर्तमान अवस्था चाहे कैसी भी हो, उसको सर्वोच्च मानने से ही आप के हृदय में आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान का अनायास उदय होने लगेगा । आत्म-साक्षात्कार को मीलों दूर की कोई चीज समझकर उसके पीछे दौड़ना नहीं है, चिन्तित होना नहीं है । चिन्ता की गठरी उठाकर व्यथित होने की जरूरत नहीं । जिस क्षण आप निश्चिंतता में गोता मारोगे उसी क्षण आपका निजस्वरूप प्रकट हो जायगा। अरे ! प्रकट क्या होगा, आप स्वयं निजस्वरूप हो ही । अ-निज को छोड़ दो तो निजस्वरूप तो हो ही।

('जीवन रसायन' में से)

दधीचि ऋषि

(अंक २९ का शेष)

देवताओं ने कहा : '' हे मुनिश्रेष्ठ ! अब तो हमारे पास कोई उपाय नहीं है । आपकी अस्थियों में जो तेज है उसे हम जीते-जी माँग भी नहीं सकते और यदि आपकी अस्थियाँ नहीं मिलतीं तो पूरा सुरपुर नष्ट हो जायेगा । इन्द्र का इन्द्रपद और हमारा सब घर-बार चौपट हो जायेगा । अब आप ही कोई रास्ता निकालिए, आप ही कोई उपाय बताइए कि हम अब क्या करें ?''

देवताओं ने ऐसा नहीं कहा कि 'आपकी ये अस्थियाँ दे दो' लेकिन इस तरह से बात की एवं इस तरह से माँगा कि ऋषि इन्कार भी न कर सकें बल्कि यह कहा कि 'आप ही उपाय बताइए महाराज ! कि हम क्या करें ?'

परोपकारी दधीचि ऋषि खिलखिलाकर हँस पड़े और तुरन्त ही बोले : ''इसमें चिन्ता की क्या बात है ? अरे ! अपनी देह, अपना प्राण किसीके काम में आता हो तो इससे बढ़कर, इस चलनेवाली, मिटनेवाली चीज का सदुपयोग और क्या हो सकता है ? एक अचल परमात्मा की प्रीति के लिए चल वस्तु को होम दिया जाये तो इससे बड़ी सुन्दर बात और क्या हो सकती है ? यह नश्वर देह देवताओं के काम आ जायेगी । तुम इसमें संकोच क्यों करते हो ? चिन्ता क्यों करते हो ? अब मुझे लगता है कि मेरा प्रारब्ध भी पूरा हो रहा है । चल का उपयोग करके देख लिया, अब मैं अचल में प्रतिष्ठित हो जाऊँगा और मेरा प्राण-पखेरू ब्रह्माण्ड में लीन हो जायेगा, शिवतत्त्व में लीन हो जायेगा । बाद में आप इस देह का उपयोग कर लेना । आप इसमें संकोच क्यों करते हो ?''

दधीचि ऋषि समाधिस्थ हो गये और देखते ही देखते उनके प्राण ब्रह्माण्ड में, परमात्मा में, शिवतत्त्व में लीन हो गये । इन्द्र ने अपनी गौ को बुलाया और शरीर चाटने का आदेश दिया । गौ ने जिह्वा से शरीर चाटा । माँस और चमड़ा चला गया, अस्थियाँ बचीं उसे विश्वकर्मा को देकर उनसे अस्त्र-शस्त्र बनाये गये । उससे ही फिर वृत्रासुर का वध हुआ ।

जब ऋषिपत्नी ने देखा कि देवता लोग तो चले गये और मेरे पति दिखते नहीं हैं । उनके शरीर का कुछ हिस्सा पड़ा हुआ है । जो काम नहीं आता वही पड़ा हुआ है । इन कपटी देवताओं ने धोखे से मेरे पति से अस्थियाँ माँगी होंगी और अस्थियों को देने के लिए पतिदेव ने समाधि करके प्राण त्याग दिये होंगे ।' ऋषिपत्नी कुपित हो गयी । 'पति नहीं रहे तो मुझे रहने की क्या जरूरत है ?' यह सोचकर उन्होंने सती होने का निश्चय किया । वे जब सती होने को जा रही थीं उसी समय आकाशवाणी हुई :

''हे देवी ! तुम कोई साधारण स्त्री नहीं हो । तुम्हारे उदर में ऋषि का तेज छुपा हुआ है । अभी तुम गर्भवती हो अत: सती नहीं हो सकती हो । यदि तुम अभी सती होगी तो बालहत्या का पाप लगेगा । ऋषि का तेज तुम्हारे गर्भ में है उसका रक्षण करो ।''

आकाशवाणी को स्वीकार करते हुए ऋषिपत्नी घर लौटीं और उनकी कोख में जो ऋषि का तेज था उसको जन्म देने का इन्तजार करने लगीं । समय पाकर बालक का जन्म हुआ तब उस बालक को लेकर जंगल में गयीं और अपने तप के प्रभाव से ऋषिपत्नी ने अरण्य

के अधिष्ठाता से कहा : ''इस बालक की रक्षा आप लोग करना । मैं सती होने को जा रही हूँ ।

ऐसा कहकर उन्होंने एक पीपल के पेड़ के नीचे अपने बालक को छोड़ दिया ।

जब ऋषिपत्नी अपने प्राणों को अचल परमात्मा में प्रतिष्ठित करके पतिपद को प्राप्त होने जा रही थी तब उन्होंने देवताओं को श्राप देते हुए कहा : ''देवताओं ने छल करके स्वार्थ के कारण मेरे पति की सरलता का दुरुपयोग किया अत: मैं श्राप देती हूँ कि देवताओं का कोई वंश नहीं चलेगा ।'' ऐसा कहकर ऋषिपत्नी ने अपने प्राणों को त्याग दिया ।

वन के अधिष्ठाता ने ऋषिपत्नी के प्रभाव के कारण ऋषिकुमार की सेवा-शुश्रूषा की । ऋषिकुमार बड़ा हुआ । पीपल के पेड़ के नीचे रहकर वह बड़ा हुआ अत: उसका नाम रखा गया पिप्पलाद । बाद में वही महर्षि पिप्पलाद के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

पिप्पलाद जब बड़े हुए तब उन्हें पता चला कि पिता के मना करने पर भी देवता लोग जबरदस्ती उनके पास अस्त्र-शस्त्र रखकर गये और बाद में दैत्यों में खलबली मचने पर उन अस्त्रों-शस्त्रों के तेज को पिताजी पी गये और उस तेज को पाने के लिए, अस्थियों को पाने के लिए देवताओं ने पुन: पिता के साथ छल किया । यह जानकर उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ कि, 'देवता इतने स्वार्थी ! जब देवता लोग ही कपट करते हैं तो दूसरों की बात ही क्या है ? इन देवताओं का सत्यानाश करके ही रहूँगा । पिता का बदला पुत्र न ले तो पुत्र को पुत्र कहलाने का हक नहीं । पुत्र के जीने को धिक्कार है ।'

पिप्पलाद को खूब क्रोध आया । उन्होंने भगवान शिव की आराधना की । खूब तप किया और तप करके अपने तन को सुखा दिया । तपस्या से उनमें बहुत शक्ति आ गई । एकाग्रता में बड़ी शक्ति होती है । एकाग्रता से मिली उस शक्ति को आप चाहे द्वेष में खर्चें चाहे राग में खर्चें । यह बात निश्चित है कि एकाग्रता से शक्ति प्राप्त होती ही है । इसमें कोई संदेह नहीं है । इन्द्रियाँ जितनी चंचल होती हैं उतनी ही शक्ति क्षीण होती है और मन तथा इन्द्रियाँ जितनी स्थिर होती हैं उतनी शक्ति उत्पन्न होती है ।

एकाग्रता में बड़ी शक्ति होती है । एकाग्रता से मिली उस शक्ति को आप चाहे द्वेष में खर्चें, चाहे राग में खर्चें । यह बात निश्चित है कि एकाग्रता से शक्ति प्राप्त होती ही है । इसमें कोई संदेह नहीं है ।

भगवान शिव की आराधना से प्रसन्न होकर स्वयं शिवजी ने पिप्पलाद को दर्शन दिये । तब पिप्पलाद ने भगवान शिव से प्रार्थना की : ''हे भगवन् ! आप मुझे शिवस्वरूप में दर्शन दे रहे हैं लेकिन मुझे शांति नहीं मिल रही है । आप अगर मुझे वरदान देकर संतुष्ट करना ही चाहते हैं तो मैं यही माँगता हूँ कि देवताओं का बदला लिया जाये । इन्द्रपुरी को भस्म किया जाये । आप विकराल रूप धारण करें और अपना तीसरा नेत्र खोलकर इस कपटी दुनिया का संहार करें ।''

जो ईर्ष्यालु हैं, किसीका यश देखकर जलते हैं, वे अपने आपका ही सत्यानाश करते हैं । द्वेषाग्नि उनके बल को, ओज को, यश को, उनके सत्य को नष्ट कर देती है ।

शिवजी ने कहा :

''पिप्पलाद ! जो बह गया सो बह गया, जो रह गया सो रह गया । वैर लेने की वृत्ति को त्यागकर तू क्षमा को धारण कर ।''

पिप्पलाद : ''इन कपटी देवताओं ने मेरे पिता की अस्थियाँ तक ले लीं । उनको तो हे नाथ ! आप भस्म कर दीजिए ।''

जब पिप्पलाद ने खूब विनती की तब शिवजी ने तीसरा नेत्र जरा-सा खोला । उससे पिप्पलाद स्वयं भीतर ही भीतर परेशान होने लगे । उनको दाहकता

महसूस होने लगी । वे शिवजी की आराधना करने लगे । तब शिवजी पुनः प्रगट हुए और बोले :

''क्यों पिप्पलाद ! क्या बात है ?''

पिप्पलाद : ''भगवन् ! मैंने तो कहा था देवताओं को नष्ट करने के लिए, किन्तु अब तो मेरे ही हृदय में तपन होने लगी ।''

शिवजी : ''पिप्पलाद ! सबके हृदय में देवता हैं । जो दूसरों को तपाना चाहता है उसको ही पहले तपन सहनी पड़ती है । कुपित ऐसे ही नहीं होते । तीसरा नेत्र खुलेगा तो अकेले देवता ही नहीं, तुम भी उन सहित कोपाग्नि के शिकार हो जाओगे । हे पिप्पलाद ! जो शील को धारण करता है वह श्रेष्ठ पुरुषों में गिना जाता है । जो क्षमा को धारण करता है, उदारता को धारण करता है उसके पास सत्य, धर्म, यश, लक्ष्मी और कीर्ति निवास करते हैं । लेकिन जो ईर्ष्यालु हैं, किसीका यश देखकर जलते हैं, वे अपने-आपका ही सत्यानाश करते हैं । द्वेषाग्नि उनके बल को, ओज को, यश को, उनके सत्य को नष्ट कर देती है । अतः पिप्पलाद ! तुम शील को धारण करो ।''

पिप्पलाद ने शिवजी के वचनों को शिरोधार्य करके अपने चित्त में शील को धारण किया । अपने हृदय में शील की प्रतिष्ठा करते ही हृदय में बहनेवाली भूतकाल की बातों का प्रभाव न रहा वरन् रहनेवाली आत्मा का प्रभाव छा गया । देवता प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि करने लगे । यक्ष और गंधर्व नृत्य करने लगे । ब्रह्माजी ने भी आकर पिप्पलाद को आशीर्वाद दिया ।

जो प्राणीमात्र से द्वेष न करते हुए सबके हित में लगा रहता है, बहनेवाली संसार की वस्तुओं को रहनेवाले परमात्मा के प्रीत्यर्थ उपयोग करता है, उस व्यक्ति को शील की प्राप्ति होती है । उसीके पास सत्य टिकता है । जहाँ सत्य होता है वहाँ धर्म होता है और जहाँ धर्म होता है वहाँ धन, यश, लक्ष्मी और सफलताएँ रहती ही हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ।*(संपूर्ण)*

प्रभु ! परम प्रकाश की ओर ले चल...

स्वामी रामतीर्थ के शिष्य सरदार पूरणसिंह ने प्रथम परिचय में ही संन्यास ग्रहण कर लिया । इसके बाद उन्होंने अपना विवाह किया । लोग इस सम्बन्ध में रामतीर्थ से शिकायत करने लगे ।

स्वामीजी ने कहा : ''वह मेरे बुलावे से मेरे पास नहीं आया था । फिर भी आ गया और उसने मुझसे प्रार्थना की तो मैंने उसे ज्ञान दिया । वह अपने आप संन्यासी बना । अब वह यदि अपना रास्ता बदल दे तो मुझे क्या परेशानी है ? चरवाहा बनकर मैं कितने भेड़-बकरियों की रखवाली करता रहूँगा ?''

''एक व्यक्ति की भूल के लिए यदि दूसरे व्यक्ति को कष्ट सहना पड़ता हो तो उसके लिए कोई उपाय तो करना ही चाहिए । ''

''यह तो तुमको सोचना है कि किसने क्या भूल की । अपने राम को यह झंझट पसन्द नहीं है । मैं तो अपने-आप में लीन हूँ, मस्त हूँ । दूसरे लोग अपनी संभालें ।''

साबो नामक एक जापानी झेन साधु थे । उनकी निन्दा इतनी बढ़ गई कि उनके शिष्य परेशान हो गए । एक खास शिष्य ने उनसे कहा : ''गुरुजी ! हम लोगों को यह नासमझ गाँव छोड़कर चले जाना चाहिए ।''

गुरु : ''ऐसा करने का क्या कारण है ?''

शिष्य : ''मुझे आपकी निन्दा पसन्द नहीं आती । यहाँ के लोग जाने क्या-क्या असत्य फैलाते हैं ? हमें यह समझ में नहीं आता कि क्या करें ।''

गुरु : ''निन्दकों का काम है निन्दा करना तथा अपने पुण्यों एवं आन्तरिक शांति का विनाश करना । संत का निन्दक तो महा हत्यारा होता है तथा मरकर सदियों तक कीट-पतंग और मेढ़क की म्लेच्छ योनियों में सड़ता रहता है । दुष्ट तो सज्जनों की कल्पित अफवाहें उड़ाते ही रहते हैं । तुम अपने सत्य के आचारधर्म में इतने तटस्थ रहो कि शेष सब तुच्छ प्रतीत होने लगे ।''

यह बात सत्य है । प्रकाश की पूजा में इतनी तन्मयता होनी चाहिए कि अन्धकार की ओर ध्यान देने का अवकाश ही न मिले ।

बड़े धनभागी हैं वे सत्शिष्य जो तितिक्षाओं को सहने के बाद भी अपने सद्गुरु के ज्ञान और भारतीय संस्कृति के दिव्य कणों को दूर-दूर तक फैलाकर मानव-मन पर व्याप्त अंधकार को नष्ट करते रहते हैं । ऐसे सत्शिष्यों को शास्त्रों में पृथ्वी पर के देव कहा जाता है ।

साधना के विघ्न

साधना की कभी राह न छोड़
अगर आत्मतत्त्व को पाना है ।
संयम की नौका पर चढ़,
तुझे भवसागर तर जाना है ॥
मत फँस प्यारे तू जीवन की
छोटी, संकरी गलियों में ।
एक लक्ष्य बनाकर पहुँच वहाँ,
जहाँ औरों को पहुँचाना है ॥

आत्मदेव की साधना का मार्ग कहीं फूलों से बिछी राह है तो कहीं काँटों से लबरेज है लेकिन इन विघ्न-बाधाओं को पार करने की जिसने हिम्मत जुटाई है, वही अपने सत्य स्वरूप की मंजिल को प्राप्त कर पाया है।

इस पथ पर असफल वे ही होते हैं जिनमें श्रद्धा, संयम, तत्परता और विश्वास की कमी होती है और जिन्हें अपनी सर्वोच्च आवश्यकता का ज्ञान नहीं होता है अथवा जिनका कोई कुशल मार्गदर्शक के रूप में गुरु नहीं हैं।

जीवन में यदि आत्मानुभूति-सम्पन्न किसी ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु का प्रत्यक्ष सान्निध्य अथवा मार्गदर्शन मिल जाए तो कहते हैं कि आधी यात्रा तो उसी दिन पूरी हो जाती है जब निजानन्द की मस्ती में जगे हुए ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष कृपाकटाक्ष करते हुए मंजिल पर पहुँचने की दीक्षा देते हैं। शेष आधी यात्रा साधक की दृढ़ता, तत्परता व श्रद्धा की गति के सहारे सद्गुरु के मार्गदर्शन में साधनामय जीवन व्यतीत करते हुए पूर्ण हो जाती है।

अनेक साधक सद्गुरु के दिखलाये मार्ग पर अथवा उनके द्वारा प्रदत्त साधन पर सन्देह कर फिसल पड़ते हैं और पुनः वहीं आ जाते हैं जहाँ से उन्होंने यात्रा शुरू की थी। अतः सद्गुरु व उनके बताये हुए साधन पर कभी सन्देह नहीं करना चाहिये, साथ ही यह संशय भी न रखना चाहिये कि वे कब, क्यों, कहाँ, किसके साथ, क्या और कैसा व्यवहार करते हैं। केवल आत्मकल्याण के उद्देश्य से विनम्रतापूर्वक उनके श्रीचरणों में रहना चाहिये।

> *जीवन में यदि आत्मानुभूति-सम्पन्न किसी ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु का प्रत्यक्ष सान्निध्य अथवा मार्गदर्शन मिल जाए तो आधी यात्रा तो उसी दिन पूरी हो जाती है।*

साधक के लिये बड़े में बड़ा विघ्न है लोकैषणा...और लोकैषणा (सम्मान की, प्रसिद्धि की चाह) साधक को भटका देती है। साधक जब तक परब्रह्म परमात्मा का पूर्णरूप से साक्षात्कार न कर ले तब तक उसे अपने सद्गुरु की मीठी छाया में, निगाह में बार-बार आना होता है और उनके आदेशानुसार ही यात्रा करनी होती है। वित्तैषणा, पुत्रैषणा आदि तो मनुष्य छोड़ सकता है लेकिन लोकैषणा बड़ा भारी विघ्न है।

> *अपनी साधना को वाह-वाही के मूल्य पर नहीं बेचना चाहिये, अपनी साधना को यश, धन या मान के मूल्य पर कभी खर्च नही करना चाहिये।*

लोगों द्वारा की जानेवाली वाह-वाही तो यहीं धरी रह जाती है और आदमी मरता है तो संस्कारों के कारण बेचारे की जन्म-मरण की यात्रा फिर भी बनी रहती है। इसलिये जब तक परब्रह्म

परमात्मा में पूर्णरूप से विश्रांति प्राप्त न हो तब तक साधक को कुछ बातों से बिल्कुल सावधान रहना चाहिये।

अपनी साधना को वाह-वाही के मूल्य पर नहीं बेचना चाहिये। अपनी साधना को यश, धन या मान के मूल्य पर कभी खर्च नहीं करना चाहिये। जब तक पूर्णरूप से परमात्मप्रसाद की प्राप्ति न हो तब तक लोकैषणा से, भोगियों के संग से, क्रोधियों व कामियों के संग से अपने को बचाये रखें।

जिस साधक में यह चाह पैदा हो जाती है, वह कुछ ही दिनो में भगवत्प्राप्ति का साधक न रहकर मान-भोग का साधक बन जाता है। अत: लोकैषणा का विष के समान त्याग करना चाहिये।

जो उन्नत किस्म के भगवद्भक्त हैं अथवा ईश्वर के आनन्द में रमण करनेवाले तत्त्ववेत्ता संत हैं, ऐसे महापुरुषों के सत्संग में आदरपूर्वक जावें... दर्शक बनकर नहीं, याचक बनकर... एक नन्हे-मुन्ने निर्दोष बालक बनकर, तो साधक के दिल का खजाना भरता रहता है।

सो संगति जल जाय जिसमें कथा नहीं राम की।
बिन खेती के बाड़ किस काम की॥
वे नूर बेनूर भले जिन नूर में पिया की प्यास नहीं॥

यार की खुमारी नहीं, ब्रह्मानंद की मस्ती नहीं, वे नूर बेनूर होते तो कोई हरकत नहीं।

प्रसिद्धि होने पर साधक के इर्द-गिर्द लोगों की भीड़ बढ़ेगी, जगत का संग लगेगा, परिग्रह बढ़ेगा और साधन लुट जाएगा। अतः अपने-आपको साधक बतलाकर प्रसिद्ध न करो, पुजवाने और मान की चाह भूलकर भी न करो। जिस साधक में यह चाह पैदा हो जाती है, वह कुछ ही दिनों में भगवत्प्राप्ति का साधक न रहकर मान-भोग का साधक बन जाता है। अतः लोकैषणा का विष के समान त्याग करना चाहिये।

'मैं यहाँ केवल मेरे देह की, इन चमड़े की दीवारों को 'मैं' मानता हूँ अन्यथा मैं तो प्रत्येक स्थान पर आनन्दरूप हूँ।'

ध्यान करने से सत्त्वगुण की वृद्धि होती है तो अत्यधिक आनन्द आने लगता है, साक्षीभाव है... फिर भी है एक रुकावट। 'मैं साक्षी हूँ... मैं आनंदस्वरूप हूँ... मैं आत्मा हूँ... आरंभ में ऐसा चिन्तन ठीक है लेकिन बाद में यहीं रुकना ठीक नहीं। 'में आत्मा हूँ... ये अनात्मा हैं... ये दुःखरूप हैं... इस परिच्छिन्नता के बने रहने तक परमानन्द की प्राप्ति नहीं होती। सात्त्विक आनंद से भी पार जो ऊँची स्थिति है, वह प्राप्त नहीं होती। अतैव फिर उसके साथ योग करना पड़ता है कि यह आनन्दस्वरूप आत्मा वहाँ भी है और यहाँ भी है।

'मैं यहाँ केवल मेरे देह की, इन चमड़े की दीवारों को 'मैं' मानता हूँ अन्यथा मैं तो प्रत्येक स्थान पर आनन्दरूप हूँ... ऐसा अभ्यास करके अभेदज्ञान जब उस योगी को हो जाता है तो उसकी स्थिति अवर्णनीय होती है, लाबयान होती है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

वह जीवन्मुक्त महात्मा बाहर से तो हम जैसा ही दिखेगा, जिसकी जैसी दृष्टि, जैसी भावना होगी उसको वह वैसा दिखेगा लेकिन भीतर से देखो तो बस... अनंत ब्रह्मांडों में फैला हुआ जो चैतन्य वपु है, वही महात्मा होकर दिख रहा है.... ॐ...ॐ...ॐ...ॐ...

साधना के पथ में आलस्य, प्रमाद, अधैर्य, अपवित्रता, पुजवाने की इच्छा, परदोषदर्शन, निन्दा, विलासिता, अनुचित अध्ययन, माता-पिता व गुरुजनों का तिरस्कार, शास्त्र व संतों के वचनों में अविश्वास, अभिमान, लक्ष्य की विस्मृति आदि प्रमुख दोष हैं। अतः साधक को इनसे सदैव परहेज रखना चाहिये व अपनी वृत्ति ईश्वर की ओर लगानी चाहिये। धनभागी हैं वे शिष्य जो तत्परता से ऐसी

ऊँची स्थिति में लग जाते हैं। साधना में जो रुकावटें हैं उन सबको उखाड़कर फेंकते जाओ। असंभव कुछ नहीं। सब कुछ संभव है। धैर्य मत खोओ। उत्तम लक्ष्य का कभी त्याग न करो। शाबाश... वीर ! शाबाश...

❀

शाश्वत संबंध

भगवान बुद्ध अपने शिष्यों को उपदेश दिया करते थे : ''हे भिक्षुओं ! तुमने कितने ही जन्म लिये हैं ! कितनी ही बार तुम मरे हो ! तुम्हारे प्रत्येक जन्म की हड्डियाँ एकत्रित करो तो हिमालय से भी ऊँचा पर्वत निर्मित हो जाए, इतने तुम्हारे जन्म बीत चुके होंगे। तुमने कितनी ही माताओं की कोख से जन्म लिया होगा ! कितना-कितना तुम एक-एक जीवन में रोये होंगे ! उन सभी रुदनों के आँसुओं को एकत्रित करें तो एक बड़ा सरोवर भर जावे, इतने आँसू तुमने बहाये होंगे, इसलिये अब सावधान हो जाओ।''

तुम्हारे प्रत्येक जन्म की हड्डियाँ एकत्रित करो तो हिमालय से भी ऊँचा पर्वत निर्मित हो जाए, इतने तुम्हारे जन्म बीत चुके होंगे।

कितना-कितना तुम एक-एक जीवन में रोये होंगे ! उन सभी रुदनों के आँसुओं को एकत्रित करें तो एक बड़ा सरोवर भर जावे, इतने आँसू तुमने बहाये होंगे, इसलिये अब सावधान हो जाओ।

जगत की नश्वर वस्तुओं के पीछे तुमने अपने समय का बहुत दुरुपयोग किया। अब शाश्वत के लिये कमर कसो। जो संबंध अन्त में मिटनेवाले हैं, ऐसी वस्तुओं और व्यवहार के पीछे तुमने अपने को बहुत खपाया। अब जिसके साथ तुम्हारा शाश्वत संबंध है उसको जानने के लिये समय निकालो।

जो बदलता नहीं उस आत्मा-परमात्मा के शाश्वत संबंध को जो जानता है, वह मुक्त हो जाता है।

संबंध तीन प्रकार के होते हैं : जन्मजात संबंध, सम्पादित संबंध और शाश्वत संबंध।

जो जन्मते ही मिल जाय, वह है जन्मजात संबंध। तुम्हारा जन्म पटेल के घर हुआ तो तुम कहोगे कि 'मैं पटेल हूँ।' ब्राह्मण के घर जन्म हुआ तो कहोगे कि 'मैं ब्राह्मण हूँ।' इस प्रकार जिस किसी भी नात-जात-सम्प्रदाय में तुम्हारा जन्म हुआ तो सुन-सुनकर उस नात-जात-संप्रदाय की कुल-परम्परा से वह संबंध तुम्हारे साथ जुड़ जाता है। माता, पिता, भाई, बहन, भाभी, चाचा, चाची, बुआ, फूआ, दादा, दादी, नाना, नानी, एवं कुल, जाति के साथ तुम्हारा संबंध जन्मते ही जुड़ जाता है। यह जन्मजात संबंध कहलाता है।

अपने सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों के साथ स्वयं द्वारा बनाये गये संबंध सम्पादित संबंध कहलाते हैं। धीरे-धीरे आप बड़े हुए... किसीको मित्र बनाया, धन्धा किया तो किसीको पार्टनर बनाया। किसीके साहब बने तो किसीको साहब बनाया। शादी हुई और लड़का किसीका साला हुआ, किसीका बहनोई बना, किसीका दामाद बना और लड़की किसीकी बहू बनी तो किसीकी काकी और किसीकी मामी। ये सब सम्पादित संबंध हैं। मित्र, शत्रु, पत्नी, पार्टनर, ग्राहक-दुकानदार, बॉस-असिस्टेंट ये सब सम्पादित संबंध हैं। इनमें ज्वालामुखी फूटते रहते हैं। कभी पत्नी रूठी, कभी बॉस गुस्सा हुए, कभी दादा मरे तो कभी पिता का कलेजा फटा, कभी माँ मरी तो कभी मौसी, कभी पुत्र मरा तो कभी पुत्री, कभी मित्र रूठा तो

(शेष पृष्ठ २२ पर)

(पृष्ठ १९ का शेष)

कभी शत्रु ने सताया, कभी बेटी रूठी तो कभी दामाद। सम्पादित संबंध में ऐसा होता ही रहता है।

तीसरा संबंध है शाश्वत संबंध। उसको तुम पहचान लो तो बेड़ा पार हो जाए। अपने तुच्छ अहंकार या अपनी तुच्छ नात-जात को पकड़कर जो कर्म में बँध जाता है वह जीव आत्मोपभोग नहीं कर सकता। लेकिन सम्पादित और जन्मजात, दोनों संबंध जिससे सिद्ध होते हैं, दोनों संबंध बदलने पर भी जो बदलता नहीं उस आत्मा-परमात्मा के शाश्वत संबंध को जो जानता हैं, वह मुक्त हो जाता है।

जन्मजात व सम्पादित संबंध में ज्वालामुखी फूटता ही है। कभी पति-पत्नी की लड़ाई तो कभी सास-बहू का झगड़ा। जमाई को पूरी जिन्दगी दिया और कभी देने में गलती हो जाय तो संबंध बिगड़े। चाहे कितनी भी पक्की दोस्ती हो लेकिन उसमें कब ज्वालामुखी फूटे, कुछ कहा नहीं जा सकता है। यदि ज्वालामुखी न फूटे तब भी मौत के समय तो सब एक-दूसरे को छोड़कर जानेवाले हैं।

शादी हुई, वर-कन्या ने फेरे फिरे और ब्राह्मणदेव ने आशीर्वाद दे दिया कि 'चिरंजीवी भवः' फिर भी मौत के समय एक-दूसरे को छोड़कर ही जाएँगे। इस प्रकार जन्मजात और सम्पादित, दोनों ही संबंधों में कुछ न कुछ गड़बड़ होता ही रहता है क्योंकि ये दोनों संबंध प्रकृति से संबंधित हैं।

शुकदेवजी महाराज राजा परीक्षित को कहते हैं : ''हे राजन् ! यह जीव परम सत्य परमात्मा का चिन्तन नहीं करता, ध्यान नही धरता इसीलिये यह माया में भटकता है।''

जन्मजात व सम्पादित संबंध बन-बनके कितने ही टूट गये फिर भी जिसका शाश्वत संबंध नहीं टूटा, उस शाश्वत संबंध का जब तक मनुष्य अनुसंधान नहीं करता, तब तक उसके चित्त के दोष, कल्मष दूर नहीं होते। फिर भले ही वह स्वयं को होशियार माने, पर सच्ची होशियारी के दर्शन उसे नहीं होते।

स्वप्न में जो आता है, वह स्वप्न तक ही सीमित है। अज्ञान अवस्था में जो ज्ञान हो रहा है वह भी अज्ञान का ही रूप है। अज्ञान में चाहे कितनी भी चतुराई, सजावट की हो, सभी वस्तुओं की प्राप्ति की हो लेकिन यह सब अज्ञानजनक ही हैं। इसीलिये हे परीक्षित ! तुम ज्ञान का सहारा लो।

जन्मजात और सम्पादित संबंध जिस आत्मदेव से उत्पन्न हुए हैं, जिस आत्मदेव के कारण हैं, दोनों संबंध में ज्वालामुखी फूटने के बाद भी जिसको आँच नहीं आती, जीवात्मा और परमात्मा का वह संबंध ही शाश्वत संबंध है। इस संबंध की जागृति का नाम ही भगवद्भक्ति है।

❀

(पृष्ठ २४ का शेष)

इन्द्रियों के साथ मन और मन के साथ बुद्धि जुड़ी हुई है। बुद्धि को जहाँ से सत्ता मिलती है, वह आत्मा एकरस है, इसीलिये इन्द्रियों का ज्ञान बदल जाता है, मन के संकल्प बदल जाते हैं, बुद्धि के निर्णय बदल जाते हैं फिर भी एक तत्त्व ऐसा है जो इन्द्रियों के ज्ञान, मन के संकल्प और बुद्धि के निर्णय बदलते हुए भी नहीं बदलता है। वह तो साक्षीरूप से सबको देख रहा है।

बचपन में हमारी बुद्धि कुछ और थी, हम पढ़े-लिखे, बड़े हुए तो बुद्धि में कुछ और परिवर्तन आया। शादी की तो बुद्धि फिर बदली और सत्संग में आये तो बुद्धि में पुनः परिवर्तन आया और आत्म-साक्षात्कार हुआ तो बुद्धि ऋतम्भरा प्रज्ञा हो जाएगी। बुद्धि तो बदली पर बुद्धि को देखनेवाला एक का एक रहा। उसका नाम आत्मा है। वही सत्ता रोम-रोम में रम रही है इसीलिये उसका नाम राम हुआ।

रमन्ते योगिनः यस्मिन् सः रामः।

'जिसमें योगी लोग रमते हैं वही राम है।' भगवान राम दशरथ के घर जन्मे उसके पहले से ही उनके पूर्वज रघुराजा 'राम-राम' का जप करते थे।

एक राम घट-घट में बोले। एक राम दशरथ घर डोले ॥
एक राम का सकल पसारा। एक राम है सबसे न्यारा ॥

उस राम का ज्ञान... वही आत्मा-परमात्मा का ज्ञान है और वह महापुरुषों की सेवा, भक्ति और सत्संग से मिल सकता है।

सच्चा धन

दो सहपाठी मित्र थे। बड़े होकर एक व्यापारी बना और दूसरा वैद्यराज बना। व्यापारी ऐहिक वस्तुओं और धनसंग्रह में निमग्न रहता था और वैद्यराज अपने ऐहिक धन का सदुपयोग करता और अपने आत्मा में मस्त रहता था।

वैद्यराज प्रतिदिन सुबह जल्दी उठकर नित्य नियम के मुताबिक परमात्मा का ध्यान करता। बाद में जो रोगी आते उन्हें औषधि देता। वह परोपकार की भावना से लोगों की सेवा करता था। जिसके जीवन में जितना अधिक परोपकार है, परहितता है, उतनी ही उसके जीवन में शांति और प्रेम अधिक होता है।

> *''मित्र ! मनुष्य को लोभ नहीं करना चाहिये । चार दिन की जिन्दगी है, इसे धनसंग्रह में मत खोओ अपितु कुछ आत्मधन की कमाई भी कर लो।''*

एक दिन व्यापारी मित्र वैद्यराज के यहाँ आया। दूसरों को चूसकर सुखी होने के व्यापारी के स्वभाव को वैद्यराज जानता था। उसने व्यापारी से कहा :

''मित्र ! मनुष्य को लोभ नहीं करना चाहिये। चार दिन की जिन्दगी है, इसे धनसंग्रह में मत खोओ अपितु कुछ आत्मधन की कमाई भी कर लो।''

> *हमारे पूर्वज भी संसार से अतृप्त होकर चले गये, राजा-महाराजा भी मृत्यु के एक झटके से श्मशान में जलकर राख हो गये तो हम इस संसार से इकट्ठा कर-करके क्या ले जाएँगे ?*

वैद्यराज की बात सुनकर व्यापारी कहने लगा :

''तुम भगत हो। ये सारी बातें अपने पास ही रखो। मेरी बातें तुमको समझ में नहीं आएगी। मैंने दो मंजिला बिल्डिंग बनाई है और अभी दूसरे दो मंजिला भवन बनानेवाला हूँ। फिर शांति से भजन करूँगा।''

वैद्यराज ने सोचा कि इसको वह शांति कब मिलेगी, कह नहीं सकते और समझाने से समझेगा भी नहीं इसलिये इसको कुछ पाठ पढ़ाना चाहिये।

उसने अपने लोभी व्यापारी मित्र से कहा : ''मुझे पाँच सेर मेढ़क ला दो तो मैं तुम्हें पाँच सौ रूपये दूँगा। मुझे मेरे डॉक्टर मित्र के यहाँ मेढ़क भिजवाना है।''

पाँच सौ रूपये की बात सुनकर व्यापारी खुशी से तैयार हो गया। तालाब किनारे से वह एक मटके में छोटे-बड़े मेढ़क ले आया। वैद्यराज ने तराजू दी और कहा कि मुझे पाँच सेर मेढ़क तोलकर दे दो।

व्यापारी ने तराजू में मेढ़क निकाले और तोलने लगा। जैसे ही तराजू ऊँची करता है, मेढ़क कूदाकूद करते हैं। दो मेढ़क एक तरफ तो दूसरे दो-तीन दूसरी तरफ गिर जाते हैं। फिर से तराजू नीचे रखता है और मेढ़क इकट्ठे करके पुनः तराजू में रखता है और तराजू ऊँची करने जाता है तो फिर से मेढ़क कूदाकूद करते हैं।

ऐसा करते-करते शाम हो गई। वैद्यराज छुपकर सब देख रहा था। व्यापारी मेढ़क तोलते-तोलते थक गया लेकिन शाम तक मेढ़क न तुले तो न तुले। उसका खाना खराब हो गया। सुबह का भी खाना गया, शाम का भी गया।

अन्ततः वैद्यराज आया। उसने कहा : '' मेढ़क तोलते-तोलते दोपहर का

भोजन भी गया, शाम का भी गया फिर भी मेढ़क तुले नहीं। ऐसे ही ये संसार के व्यवहार हैं। 'परीक्षा में पास हो जाएँ तो शांति... प्रमोशन हो जाय तो शांति...' यह सब मेढ़क तोलने जैसा ही है। हमारे पूर्वज भी संसार से अतृप्त होकर चले गये, राजा-महाराजा भी मृत्यु के एक झटके से श्मशान में जलकर राख हो गये तो हम इस संसार से इकट्ठा कर-करके क्या ले जाएँगे ? इसलिये व्यवहार में भी आत्मज्ञान पाने के लिये यत्न करना चाहिये।''

आध्यात्मिक विद्या में आगे बढ़ेंगे तो एहिक चीजें तो पाले हुए कुत्ते की तरह हमारे पीछे-पीछे आएँगी।

चार पैसे की नौकरी-धन्धे के लिये जीवन नहीं मिला है किन्तु महान में महान आत्मा को पहचानने के लिये मनुष्य जन्म मिला है। हम पूरी सृष्टि के राष्ट्रपति हो जाएँ लेकिन हमारे पास आध्यात्मिक खजाना नहीं होगा तो हम कंगाल हैं और हमारे पास खाने के लिये अन्न नहीं है, पहनने के लिये कपड़े नहीं हैं लेकिन आत्मविद्या है तो हम पूरी पृथ्वी के सम्राट हैं। इन्द्र से भी बड़े हैं। आध्यात्मिक विद्या में आगे बढ़ेंगे तो ऐहिक चीजें तो पाले हुए कुत्ते की तरह हमारे पीछे-पीछे आएगी।

'शरीर नहीं था तब भी मैं था, शरीर है तब भी मैं हूँ और शरीर नहीं रहेगा फिर भी मैं तो रहूँगा। वह मैं कौन हूँ ? वह मैं कैसा हूँ...?' ऐसा स्वरूप का ज्ञान ही आत्मज्ञान है।

आध्यात्मिक विद्या पाने के लिए हररोज सुबह नींद से उठकर बिस्तर पर बैठे हुए ही विचार करना : मैं आज के दिन आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढूँगा। आज के दिन मैं सत्कर्म करूँगा। ऐसा शुभ संकल्प करके अचिन्तनीय आत्मा में शांत होकर बाद में यदि बिस्तर का त्याग करें तो व्यवहार में हमको सफलता मिलेगी, आरोग्यता बढ़ेगी और आध्यात्मिक उन्नति होगी। सुबह कम-से-कम पाँच-दस मिनट परमात्मा की प्रार्थना करें और दीक्षा के समय बतलाये हुए अजपाजाप को आदरपूर्वक श्रद्धा से करें। यह परमात्मा की अंतरंग साधना है इससे आनन्द और परमात्मशांति बढ़ती है।

इन्द्रियों का ज्ञान बदल जाता है, मन के संकल्प बदल जाते हैं, बुद्धि के निर्णय बदल जाते हैं फिर भी एकतत्त्व ऐसा है जो नहीं बदलता है। वह अबदल साक्षीरूप चैतन्य हो तुम।

खुद को ढूँढने के लिये, हमारे स्वरूप का ज्ञान पाने के लिये यदा-कदा एकांत में भी जाना चाहिये तथा अपने-आप से प्रश्न करना चाहिये कि 'मैं कौन हूँ ?' इस शरीर का जन्म हुआ, इसके बाद छठे दिन बुआ ने इसका नाम रखा। जन्म के पहले शरीर का नाम न था और शरीर की मृत्यु के बाद भी कोई नाम नहीं रहेगा।

शरीर न रहे, शरीर का नाम न रहे फिर भी जो रहता है, इस अनामी आत्मा को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न करनी चाहिये। 'शरीर नहीं था तब भी मैं था, शरीर है तब भी मैं हूँ और शरीर नहीं रहेगा फिर भी मैं तो रहूँगा। वह मैं कौन हूँ ? वह मैं कैसा हूँ...?' ऐसा स्वरूप का ज्ञान ही आत्मज्ञान है।

एक फूल लें तो आँखें हमको उसके रंग-रूप का अनुभव करवा सकती हैं लेकिन सुगन्ध का अनुभव नहीं करवा सकतीं। नाक फूल की सुगन्ध बताएगा लेकिन स्वाद नहीं बता पाएगा। ऐसे कान ध्वनि को बताएगा लेकिन उसका स्पर्श नहीं बता सकेगा। पाँचों इन्द्रियाँ होते हुए भी मन और बुद्धि उसके साथ न जुड़ें तो फूल का ज्ञान नहीं होगा।

(शेष पृष्ठ २२ पर)

मलेरिया का अक्सीर इलाज

मलेरिया का बुखार मुख्यतः समूचे बदन में ठंड के साथ आता है व पूरे शरीर में दर्द होता है। कइयों को उल्टी व सिरदर्द भी होता है। मलेरिया का बुखार दूसरे, तीसरे व चोथे दिन के अन्तर से भी आता है।

यह बुखार देखने में सामान्य-सा लगता है लेकिन कितनी ही बार यह खतरनाक सिद्ध हो जाता है। इतिहास के पन्नों में देखें तो रोम में रोमन जाति और यूनान में यूनानी जाति को दुर्बल व दीन-हीन बनाने में मलेरिया का ही हाथ था।

हमारे ऋषियों ने गंभीर चिन्तन कर इस रोग का ऐसा उपचार खोज निकाला कि इसके सेवन से जीवन में फिर कभी मलेरिया होवे ही नहीं।

हमारे ऋषियों ने गंभीर चिन्तन कर इस रोग का ऐसा उपचार खोज निकाला कि इसके सेवन से जीवन में फिर कभी मलेरिया होवे ही नहीं।

उपचार एकदम सादा व सरल है। हनुमानजी के पूजन में जिसके फूल उपयोग में लाये जाते हैं, उस आकडा या आक नामक पौधे की अंगुली जितनी मोटी दो डाली (शाखा, डंठल) जो कि ताजी व हरी हो, एक-एक फीट की लम्बाई के प्रमाण में काट लें। जहाँ से काटना है उसके आगे का हिस्सा नीचे की ओर झुका दें ताकि काटते समय डाली का दूध नीचे न गिर सके। डाली धोते समय भी कटे भाग पर अंगुली दबाकर धोवें।

तत्पश्चात् कलई की हुई अथवा स्टील की पतीली में चार सौ ग्राम दूध (गाय का हो तो सर्वोत्तम) गर्म करें। जब दूध उबलने लगे तो काटकर लाई गई आक की दोनों डालियों के कटे हुए भाग की ओर से दूध को हिलावें। इस प्रयोग से दूध फट जाएगा फिर भी मावा (खोया) बनने तक उन्हीं दो डालियों से दूध हिलाते रहें।

मावा (खोया) तैयार हो जाने पर उसमें थोड़ी-सी ही मिश्री या चीनी मिला लें। अधिक मीठा होने पर इसके गुण खत्म हो जाते हैं। इलायची व बादाम भी डाल सकते हैं। ठंडा हो जाने पर एक ही बैठक में रोगी को पूरा मावा खिला देवें। ध्यान रहे कि यह मावा रोगी को बुखार होने की दशा में न खिलावें अन्यथा वमन द्वारा बाहर निकल सकता है। बुखार न हो, शरीर का तापमान सामान्य हो तब खिलाने से उसे पुनः मलेरिया कभी नहीं होगा तथा आजीवन वह मलेरिया के रोग से मुक्त हो जाएगा। इस औषधि का शरीर पर किसी भी प्रकार का कोई कुप्रभाव (Side Effect) नहीं पड़ता।

इस औषधि का शरीर पर किसी भी प्रकार का कोई कुप्रभाव (Side Effect) नहीं पड़ता।

एक से छः वर्ष की आयुवाले बालकों पर यह प्रयोग नहीं किया गया है किन्तु छः से बारह वर्ष के बालकों के लिये दूध की मात्रा आधी अर्थात् २०० ग्राम कर उपरोक्तानुसार ही मावा तैयार करके खिलावें।

वर्तमान में जो मलेरिया के रोगी न हों वे भी यह प्रयोग करें तो उन्हें भविष्य में कभी मलेरिया होने की संभावना न रहेगी। दिमाग के जहरीले मलेरिया बुखार में भी यह प्रयोग अक्सीर इलाज का काम करता है। आशा है 'ऋषि प्रसाद' के पाठक आप भी लाभान्वित होंगे व दूसरों को भी कहे बिना चुप नहीं बैठेंगे, यह भी उतना ही सत्य है। अब 'जय रामजी की...' तो बोलना ही पड़ेगा।

हररोज खुशी हरदम खुशी हरहाल खुशी
जब साधक मस्त फकीर का हुआ,
तो फिर क्या दिलगीरी बाबा !

ॐ आनन्द... ॐ शांति... ॐ प्रसन्नता...

नवीन ज्वर में पथ्यापथ्य

नवज्वरे दिवास्वप्नस्नानाभ्यंगान्न मैथुनम् ।
क्रोधप्रवात व्यायामान् कषायाश्च विवर्जयेत् ॥

'नये ज्वर में दिन का शयन, स्नान, अभ्यंग, अन्न का सेवन, मैथुन, क्रोध, तीव्र या पूर्वी हवा का सेवन, व्यायाम और कषाय (तुरा) रसवाले द्रव्यों का सेवन अत्यन्त हानिकारक है ।'

नवीन ज्वर में दूध, घी का सेवन तो विष के समान माना गया है। जिन्हें अधिक बलहानि हो वे यदि दिन में कुछ समय शयन करें तो हानि नहीं लेकिन ज्वर का बहाना लेकर दिन में भी सोये रहना स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है।

नवीन ज्वर में जिन्हें अधिक बल-हानि हो वे यदि दिन में कुछ समय शयन करें तो हानि नहीं लेकिन ज्वर का बहाना लेकर दिन में भी सोये रहना स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है ।

ज्वर आने पर हो सके तो आहार में उबले हुए मूंग का पानी ही कुछ दिनों तक लेना चाहिये। पानी भी उबालकर ठंडा किया हुआ अथवा सोंठ डालकर उबालकर ठंडा किया हुआ ही पीना चाहिये।

ज्वर रहने पर रोगी को किसी प्रकार का श्रम न कर विश्राम ही करना चाहिये। ऐसे रोगी अपने शरीर को बराबर ढंककर रखें। पंखे, कूलर, एयरकंडीशन की हवा न लगे, ऐसे स्थान पर रहना चाहिये तथा सात्त्विक वैद्य के परामर्शानुसार योग्य औषधि के साथ उपरोक्त पथ्यापथ्य का पालन करना चाहिये।

डायाबिटिज (मधुमेह) में पथ्यापथ्य

डायाबिटिज (मधुमेह) के रोगी को भूने हुए जौ की रोटी, शुष्क सत्तू या जौ-गेहूँ के आटे से बनी रोटी, थोड़ी-सी काली मिर्च व आँवला डालकर पकाये हुए मूंग, परवल, करेला या अन्य कड़वी सब्जियों का सेवन हितकारी है।

नये अन्न, शराब, मांसाहार, गुड़-शक्कर से निर्मित आहार, चावल, आलू और वायु करनेवाले अन्य आहार, दूध-दही-घी-तेल से निर्मित आहार, सुपारी, पान, दिन की निद्रा, अव्यायाम इस रोगी को अहितकारी हैं।

डायाबिटिज के रोगी को अपने बल के अनुसार नियमित आसन, व्यायाम और प्रातः-सायं पैदल भ्रमण करना चाहिये। चिंता, भय आदि से भी मधुमेह होता है अतः डायाबिटिज के रोगी को नियमित ध्यान, श्वासोच्छ्वास की गणना, शवासन, मंत्रजाप, ब्रह्मचर्य का पालन आदि करना चाहिये।

डायाबिटिज के जो रोगी कुछ दुर्बल हैं उन्हें अपने बल से अधिक व्यायाम-परिश्रम नहीं करना चाहिये।

हार्ट अटैक व डायाबिटिज के रोगियों को 'ईश्वर की ओर' व 'यौवन सुरक्षा' पुस्तक पाँच बार अवश्य पढ़नी चाहिए और भगवान शिव में यदि श्रद्धा हो तो 'श्रीगुरुगीता' का पाठ अवश्य करना चाहिए।

मधुमेह के रोगी को हर एक घंटे में जोर से सीटी बजाकर हँसना चाहिए व कहना चाहिए :

''फिकर फेंक कुएँ में... जो होगा सो देखा जायगा... ॐ निश्चिन्तता... ॐ....ॐ...ॐ...'' ऐसा जप करना चाहिए। इससे अवश्य लाभ होता है।

डायाबिटिज में करेले, बिलपत्र या नीम के पत्तों का रस पियें। मेथी के दाने रात में भीगोकर सुबह में उसका पानी पियें। त्रिफला का क्वाथ (काढा) बनाकर पियें अथवा गुड़मार (मधुनाशिनी) का ताजा पत्ता मिले तो एक पत्ता रोज खावें।

जब गुरुदेव ने राखी बांधी

मुझे गुरुकृपा से दिनांक : ६ से १३ अगस्त १९९५ तक एक सप्ताह का अहमदाबाद आश्रम में मौन साधना का अनमोल अवसर प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेव इन दिनों अमेरिका, कनाडा व लन्दन में सत्संगामृत की वृष्टि करने पधारे हुए थे।

दिनांक : १० अगस्त को रक्षाबंधन के दिन मेरे मन में विचार आया कि, 'आज रक्षाबंधन है। सभी भाइयों के हाथ में राखी बँधी है लेकिन मेरा हाथ खाली है।' मैंने मन ही मन गुरुदेव से प्रार्थना की : 'आज तक मैंने संसारी बहनों के पास से संसारी रक्षा का बंधन माँगा किन्तु आज हे मेरे गुरुदेव ! आप मेरे हाथों में ऐसा रक्षाबंधन बाँधो कि मैं काम-विकार के दलदल से बच निकलूँ, मोह-माया के बंधन से मुक्त हो जाऊँ, क्रोध की ज्वाला से बच जाऊँ।'

> ''हे गुरुदेव ! मुझे ऐसा रक्षाबंधन बाँधो कि मैं काम-विकार के दलदल से बच निकलूँ, मोह-माया के बंधन से मुक्त हो जाऊँ, क्रोध की ज्वाला से बच जाऊँ।''

ऐसी प्रार्थना करते हुए मैं गुरुप्रेम से सराबोर होकर सत्संग भवन के व्यासपीठ तक आया। गुरुगादी के सम्मुख मैंने साष्टांग दण्डवत् दशा में पुनः यही प्रार्थना की और मेरी आँखें नम हो गईं। मैं अभी व्यासपीठ के सम्मुख साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुए भूमि पर लेटा हुआ ही था कि मेरी बन्द आँखों में एक दृश्य दिखा कि मैं साक्षात् गुरुदेव के सम्मुख हूँ और गुरुदेव ने मुझे उठने की आज्ञा दी। गुरुदेव के हाथ में राखी थी। मैंने हाथ लम्बा किया तो गुरुदेव ने मेरे हाथ में राखी बाँधकर मुझे तीनों तापों से मुक्त कर दिया।

मैं दण्डवत् कर आँख खोलकर जैसे ही उठा तो महान् आश्चर्य...!!! मेरे दाहिने हाथ में वही सफेद रेशम की राखी बँधी हुई थी जो अभी-अभी गुरुदेव ने मुझे उस अलौकिक दृश्य में बाँधते हुए दिखाई थी। मैं खुशी के मारे उछल पड़ा... कहाँ तो मेरे गुरुदेव इस दिन अमेरिका में थे... और कहाँ अपने भक्त की करुण पुकार सुन मेरे हाथ में राखी बाँधने भारत के अहमदाबाद में तुरन्त ही आ पहुँचे ! इन साक्षात् ब्रह्म के पावन करकमलों से राखी बँधवाकर मेरा तो जीवन धन्य हो गया।

> कहाँ तो मेरे गुरुदेव इस दिन अमेरिका में थे... और कहाँ अपने भक्त की करुण पुकार सुन मेरे हाथ में राखी बाँधने भारत के अहमदाबाद में तुरन्त ही आ पहुँचे !

मैंने यह राखी मेरे साथ व्यासपीठ पर दर्शन करने आये अन्य साधक भाइयों को भी बताई। उन्हें भी आश्चर्य हुआ कि यह दर्शन करने तो खाली हाथ आया था, इसके हाथ में अभी की अभी यह राखी....!!!

उनका शीश भी यह दृश्य देखकर श्रद्धा से पूज्य

बापूजी के श्रीचरणों में व्यासपीठ पर झुक गया। मैंने तुरन्त ही यह अनमोल राखी 'ऋषि प्रसाद' के सम्पादकीय विभाग में भी दिखाई।

पूज्य बापू की कृपा का क्या वर्णन करूँ। मैं तो वही कहूँगा :

नजरें जब बदली तो नजारे बदल गये।
किश्ती का रुख बदला तो किनारे बदल गये॥

-विनोद नरसिंह गज्जर

२४४, उमेदनगर कालोनी, भुज-कच्छ, गुजरात।

डूबते को गुरुकृपा का सहारा

दिनांक : २४-५-९४ की घटना है। हम लोग सपरिवार हृषिकेश में आयोजित परम पूज्य गुरुदेव संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग समारोह में लाभ लेने रात्रि में घर से निकले। रास्ते में हम हरिद्वार के कुशाघाट पर स्नान करने रुके। मैंने दूसरी पौढ़ी पर बैठकर डिब्बे से स्नान किया तो नहाने का आनंद नहीं आया। गंगा में जब तक डुबकी लगाकर न नहाया जाय तब तक नहाने का आनन्द नहीं आता। मैं जंजीर पकड़कर चौथी पौढ़ी पर उतर गया। वहाँ पानी मेरी छाती तक आ गया। पानी का बहाव पौढ़ी पर मेरे पैरों को टिकने नहीं दे रहा था, फिर भी सोचा, एक डुबकी लगा ही ली जाय।

उस समय मेरे मुख में गुरुमंत्र का जाप चल रहा था। 'जय गुरुदेव... जय गंगा मैया...' का उच्चारण करके मैं डुबकी लगाने के बाद ज्यों ही पानी से बाहर आया, मेरे पैरों से पौढ़ी छूट गई। तेज बहाव ने मेरे पैरों को नहीं टिकने दिया। ऊपर पैर उठने से मैं घबरा गया। गुरुदेव का स्मरण करते हुए गोते खाने लगा। बाँये हाथ से जंजीर पकड़ रखी थी व दाँये हाथ में पानी का डिब्बा था। डिब्बा छोड़ मैंने दाहिने हाथ से भी जंजीर पकड़ने का प्रयत्न किया किन्तु सफल न हो सका और तैरना न आने के कारण तेज बहाव में गोते पर गोते खाने लगा। फिर भी गुरुदेव व गुरुमंत्र का सतत् स्मरण करता रहा।

इतने में मेरे बड़े लड़के की नजर मुझ पर पड़ी। मुझे खतरे में देख उसने विवेक खोकर गंगा में मुझे पकड़ने के लिये छलांग लगा दी। वह मुझे तो न पकड़ सका अपितु पानी के बहाव के साथ खुद मुझसे दूर जाने लगा। मेरी पत्नी ने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू किया - 'बचाओ... बचाओ...।' मेरी पुत्री ने गंगा में बढ़कर मुझे पकड़ने की कोशिश की लेकिन वह भी सफल न हुई और बहकर अपने भाई की ओर जाने लगी। फिर छोटे लड़के ने दूर दौड़कर भाई की तरफ छलांग लगाकर उसकी कमीज को जोर से पकड़ लिया। मैंने गुरुदेव से प्रार्थना की : 'हे प्रभु ! अब आपका ही सहारा है। मेरे परिवार को बचा लो।'

इतने में मेरी पुत्री भी अपने भाइयों के पास बहकर पहुँच गई। छोटी पुत्रवधू उतरी तो वह भी पानी के तेज बहाव के साथ जाने लगी लेकिन गुरुकृपा से किसी तरह सब बाहर निकलने में सफल हो गये।

मैं अभी-भी जंजीर पकड़े गोते ही खा रहा था लेकिन मेरा गुरुमंत्र का जप फिर भी चालू ही था, और यही वह शक्ति थी, जो इतने तेज बहाव में अनगिनत गोते खाने के बाद भी मेरा बाँया हाथ, जिस एक हाथ के सहारे ही मैं जंजीर पकड़े हुए था, छूटने नहीं दे रही थी। गोते खा-खाकर मेरे दोनों पैरों की अंगुलियाँ जख्मी हो चुकी थीं।

उधर बाहर निकलकर दोनों पुत्रों ने विवेक से काम लेकर दो अन्य बाहरी व्यक्तियों की सहायता से एक-दूसरे को पकड़ दूसरी पौढ़ी पर आकर मजबूती से मेरा दाँया हाथ पकड़ा और मुझे जंजीर छोड़ने को कहा। इस तरह वे खींचकर मुझे बाहर ले आये।

एक तो गंगा के जल की शीतलता से ठंडा होता शरीर, दूसरा पानी का तेज बहाव व तीसरी वृद्धावस्था की ओर बढ़ते कदम एवं शारीरिक दुर्बलता... इन तमाम विषम परिस्थितियों में, जहाँ मौत आकर मेरे परिजनों के शरीर बहा ले जाना चाहती थी, वहीं निरन्तर गुरुमंत्र के जप ने मुझमें इतनी शक्ति भर दी कि अशक्तता व अक्षमता के बाद भी मैंने जंजीर नहीं छोड़ी। गुरुदेव के दर्शन व

सत्संग की अभिलाषा में आया मेरा परिवार भी गुरुकृपा से मौत के मुँह से बच निकला। मुझे याद आती हैं वे पक्तियाँ जो पूज्यश्री की महानता पर लिखी गई हैं :

सभी शिष्य रक्षा पाते हैं। सूक्ष्म शरीर गुरु आते हैं॥

हरिद्वार से हम शाम ४-३० बजे हृषिकेश पहुँचे, जहाँ पूज्य बापू के दर्शन व सत्संग का लाभ लिया।

आज भी जब उस घटना की याद आती है, साया बन साथ रहकर अपने शिष्यों की रक्षा करनेवाले सद्‌गुरु साईं श्री आसारामजी बापू के चरणों में सिर श्रद्धा से झुक जाता है।

- डॉ. श्याम सुन्दर सरदाना
सेवक अस्पताल, झझर, जिला रोहतक (हरियाणा)

❀

गुरुभक्तियोग

१. गुरुभक्तियोग का आश्रय लेकर आप अपनी खोई हुई दिव्यता को पुनः प्राप्त करो, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु आदि सब द्वन्दों से पार हो जाओ।

२. जंगली बाध, शेर या हाथी को पालना बहुत सरल है, पानी या आग के ऊपर चलना बहुत सरल है लेकिन जब तक मनुष्य को गुरुभक्तियोग के अभ्यास के लिए हृदय की तमन्ना नहीं जागती तब तक सद्‌गुरु के चरणकमलों की शरण में जाना बहुत मुश्किल है।

३. गुरुभक्तियोग माने गुरु की सेवा के द्वारा मन और उसके विकारों पर नियंत्रण एवं पुनः संस्करण।

४. गुरु को सम्पूर्ण बिनशरती शरणागति करना गुरुभक्ति प्राप्त करने के लिए निश्चित मार्ग है।

५. गुरुभक्तियोग की नींव गुरु के ऊपर अखण्ड श्रद्धा में निहित है।

६. अगर आपको सचमुच ईश्वर की आवश्यकता हो तो सांसारिक सुखभोगों से दूर रहो और गुरुभक्तियोग का आश्रय लो।

७. किसी भी प्रकार की रुकावट के बिना गुरुभक्तियोग का अभ्यास जारी रखो।

८. गुरुभक्तियोग का अभ्यास ही मनुष्य को जीवन के हर क्षेत्र में निर्भय एवं सदा सुखी बना सकता है।

९. जो कान गुरु की लीला की महिमा नहीं सुनते वे कान सचमुच बहरे हैं।

१०. गुरुभक्तियोग के द्वारा अपने भीतर ही अमर आत्मा की खोज करो।

११. गुरुभक्तियोग को जीवन का एकमात्र हेतु, उद्देश्य एवं सच्चे रस का विषय बनाओ। इससे आपको परम सुख की प्राप्ति होगी।

१२. गुरुभक्तियोग ज्ञानप्राप्ति में सहायक है।

१३. गुरुभक्तियोग का मुख्य हेतु तूफानी इन्द्रियों पर एवं भटकते हुए मन पर नियंत्रण पाना है।

१४. गुरुभक्तियोग हिन्दू संस्कृति की एक प्राचीन शाखा है जो मनुष्य को शाश्वत सुख के मार्ग में ले जाती है और ईश्वर के साथ सुखद समन्वय करा देती है।

१५. गुरुभक्तियोग आध्यात्मिक और मानसिक आत्मविकास का शास्त्र है।

१६. गुरुभक्तियोग का हेतु मनुष्य को विषयों के बन्धन से मुक्त करके उसे शाश्वत सुख और दैवी शक्ति की मूल स्थिति की पुनः प्राप्ति कराने का है।

१७. गुरुभक्तियोग मनुष्य को दुःख, जरा और व्याधि से मुक्त करता है, उसे चिरायु बनाता है, शाश्वत सुख प्रदान करता है।

१८. गुरुभक्तियोग में शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक... हर प्रकार के अनुशासन का समावेश हो जाता है। इससे मनुष्य आत्मप्रभुत्व एवं आत्म-साक्षात्कार पा सकता है।

१९. गुरुभक्तियोग मन की शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिए विज्ञान एवं कला है।

२०. जो आँखें गुरु के चरणकमलों का सौन्दर्य नहीं देख सकती वे आँखें सचमुच अन्ध हैं।

- स्वामी शिवानंदजी

संस्था-समाचार

जयपुर : यहाँ श्री वासुमल सदन, तीसरी मंजिल, नवभारत टाइम्स के पास टोंक रोड़ पर स्थित संत श्री आसारामजी सत्संग भवन में प्रति रविवार नियमित रूप से प्रातः ८-३० से ११-०० बजे तक विडियो सत्संग का आयोजन किया जाता है जिसमें शहर व आसपास के अनेकों भक्त भाग लेते हैं।

जबलपुर (म.प्र.) सत्संग मंडल द्वारा स्थानीय स्तर पर आयोजित साप्ताहिक विड़ियो सत्संग में भी उत्साहजनक प्रगति के समाचार मिले हैं।

बथुआ, मिरजापुर (उ.प्र.) एवं मदनगढ़ किशनगढ़ (अजमेर, राजस्थान) की योग वेदान्त सेवा समितियों द्वारा भी नियमित साप्ताहिक विड़ियो सत्संग एवं प्रभातफेरी आयोजित कर क्षेत्रीय लोगों को पूज्य बापू के दिव्य वचनामृतों का सुधापान कराया जा रहा है। सौभाग्यशाली हैं वे साधक जो खुद तो प्रभुप्रेम की प्यालियाँ पीते ही हैं, औरों को भी आत्मरस की मदिरा छलकानेवाले पूज्य बापू जैसे ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुओं के जीवनोद्धारक वचनों से लाभान्वित करते रहते हैं।

मुलुन्ड (बाम्बे) में प्रति रविवार शाम ५ से ८ बजे तक श्री मुक्तेश्वर महादेव मंदिर, आर. पी. रोस्ट में विड़ियो सत्संग का आयोजन एवं ग्रीष्म ऋतु में निःशुल्क छाछ का वितरण श्री योग वेदान्त सेवा समिति द्वारा नियमित रूप से किया जाता है।

धाय धामोदला (गुजरात) तथा अमझेरा (म.प्र.) समिति द्वारा गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर विशाल संकीर्तनयात्रा का आयोजन कर पूरे कस्बे में प्रसाद-वितरण कार्यक्रम आयोजित किया गया।

प्रकाशा (महा.) समिति द्वारा भी गुरुपूर्णिमा पर्व पर नगर में विशाल संकीर्तन यात्रा के साथ गुरुपूर्णिमा महोत्सव आरंभ हुआ। तत्पश्चात् सभी साधकों ने आश्रम आकर श्रीगुरुपादुका-पूजन एवं श्री आसारामायण का पाठ किया। आश्रम में वृक्षारोपण एवं प्रसादवितरण भी हुआ।

दाहोद (गुजरात) समिति द्वारा रक्षाबंधन पर्व पर गिरधरगंज अनाज मार्केट स्थित संत श्री आसारामजी सत्संग भवन में जपयज्ञ का आयोजन हुआ। लक्ष्य था केवल सवा लाख मंत्रजप का लेकिन वहाँ के साधकों को गुरुमंत्र-जप का ऐसा रंग लगा कि सवा चार लाख जप से जपयज्ञ की पूर्णाहुति हुई। अब सवा करोड़ जपयज्ञ का आयोजन किया जा रहा है।

देवास (म.प्र.) समिति द्वारा स्वाधीनता दिवस के अवसर पर शहर में विशाल संकीर्तनयात्रा का आयोजन हुआ जिसमें पूज्य बापू के सुन्दर चित्रों से सजी पाँच झाँकियों ने व कतारबद्ध होकर हरिनाम की मस्ती में सड़कों पर झूमते हजारों हरिभक्तों ने हर किसीका मन मोह लिया।

बनस्थली (टोंक, राजस्थान) समिति द्वारा गुरुपूर्णिमा महोत्सव पर संकीर्तनयात्रा, विडियो सत्संग एवं शर्बत वितरण का सार्वजनिक समारोह आयोजित किया गया।

जीरन (म.प्र.) समिति द्वारा श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर्व पर रात्रि में कीर्तन, सत्संग, श्री आसारामायण का पाठ एवं प्रसादवितरण कार्यक्रम आयोजित किया गया। समिति द्वारा प्रति गुरुवार नियमित सत्संग का आयोजन किया जाता है।

शिरपुर (महा.) में प्रति शुक्रवार रात्रि नौ से ग्यारह बजे तक टी.वी. क्लब केबल प्रसारण के माध्यम से पूज्य बापू के विडियो सत्संग का प्रसारण किया जाता है। प्रति शुक्रवार इस सत्संग कार्यक्रम का लाभ तीस हजार से अधिक लोग लेते हैं। प्रतिवर्षानुसार शिरपुर समिति ने इस वर्ष भी आश्रम द्वारा प्रकाशित रियायती दर की नोट बुकों का वितरण कार्य भी किया।

दिल्ली व बंबई में लाखों-लाखों की संख्या में

प्रतिदिन केबल टी. वी. के द्वारा सत्संग सुनने के रसिक सत्संगी सज्जनों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। किसी कारण केबल टी. वी. वालों ने कैसेट न दिखाई तो धड़ाधड़ फोन पर फोन आने शुरू हो जाते हैं कि या तो पू. बापू का सत्संग चलाओ या फिर हमारा कनेक्शन काट दो।

दिनांक : २१ से २३ जुलाई तक पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में **अमेरिकामें न्यूजर्सी के एडिसन शहर में** सत्संग समारोह का अति भव्य आयोजन हुआ। एक लम्बे अन्तराल के बाद उस दूर देश में अपने सद्गुरुदेव का सान्निध्य पाकर हजारों अमेरिकावासी झूम उठे। भारतीय संस्कृति के प्रचारक पूज्य बापूजी की अमृतवाणी को अपनी चैनल के माध्यम से सम्पूर्ण अमेरिका में जन-जन तक पहुँचाने के लिए ए. टी. वी. (एशिया टी.वी.) द्वारा दूरदर्शन के अद्यतन कैमरों द्वारा पूज्यश्री के सुप्रवचनों की रिकार्डिंग की गई।

दिनांक : २८ से ३१ जुलाई तक **कनाड़ा के टोरंटो** में सत्संगरूपी शीतल अमृतप्रसाद का वितरण करते हुए पूज्यश्री पुनः **अमेरिका के शिकागो** की ओर रवाना हुए।

कनाड़ा की ज्ञानधारा रेडियो चैनल हर बार पू. बापू के सत्संग संग्रह करके वर्ष में बार-बार अपने श्रोताओं को सुनाते हैं। इस बार भी उन्होंने पूज्य बापू के सत्संग व प्रश्नोत्तर रिकार्ड करके रेडियो स्टेशन से कनाडा में सुनाये।

सितम्बर १९९३ के विश्वधर्म संसद कार्यक्रम में अपने ओजस्वी व वक्तव्यो के माध्यम से विश्व के विभिन्न धर्मों के भाग लेने आये छः सौ से अधिक धार्मिक वक्ताओं के मध्य भारत व हिन्दू धर्म की गरिमा स्थापित करनेवाले संत पूज्यपाद श्री आसारामजी बापू के पुनरागमन पर **शिकागोवासियों ने** पलक-पावड़े बिछाकर तहेदिल से अपने प्यारे सद्गुरु का हार्दिक अभिनन्दन किया तथा दिनांक : ५ से ८ अगस्त १९९५ तक पूज्यश्री के सुप्रवचनों का श्रवण किया।

इस तरह अमेरिका व कनाडा में अल्प समय में ही सनातन संस्कृति के उच्चादर्शों की स्थापना करते हुए पूज्यश्री **ब्रिटेन** पधारे। दिनांक : १२ व १३ अगस्त को **लन्दन** में पूज्य बापू के पावन वचनामृतों का रसपान करने के लिये सत्संगप्रेमी एकत्रित हुए जिन्होंने आपश्री के मुखारविन्द से प्रस्फुटित सत्संग सरिता में अवगाहन कर धन्यता का अनुभव किया।

बी. बी. सी. इन्टरनेशनल रेडियो ने दिनांक : १४ अगस्त के दिन पूज्यश्री का भावपूर्ण स्वागत करके पूज्यश्रीका इन्टरव्यू लिया जो सितम्बर मास में समग्र विश्व में बी. बी. सी. इन्टरनेशनल रेडियो पर प्रसारित किया जाएगा।

दिनांक : १६ अगस्त को आप्रश्री का स्वदेशागमन हुआ। बम्बई के अन्तरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर विदेश से लौटे अपने स्वामीजी के स्वागतार्थ हजारों की संख्या में साधक-भक्त मौजूद थे, जिन्होंने अपने सद्गुरुदेव का उष्मापूर्ण स्वागत किया। उसी दिन पूज्य बापू बम्बई से सूरत (गुज.) की ओर रवाना हुए।

सूरत : श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव में भाग लेने आये हजारों साधक यहाँ काफी पहले से पूज्य बापू के आगमन की प्रतीक्षा में थे। जैसे ही पूज्य बापू के साथ आई कारों का काफिला करीब आया, हजारों शीश सश्रद्ध हो झुक गये। हजारों आँखें गुरुदर्शन से खुशी में नम हो उठीं, मानो यह कह रही हों :

दिल उन्हें तरसता है जब वे दूर होते हैं।
आँख उन्हें तरसती है जब वे करीब होते हैं।

दिनांक : १७ से २३ अगस्त तक सूरतवासियों को पूज्य बापू के पावन सान्निध्य का लाभ मिला। १८ अगस्त को सूरत आश्रम में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव का आयोजन हुआ जिसमें बालभक्तों ने रास-गरबा की प्रस्तुति की। तत्पश्चात् 'मटकी-फोड़' व 'माखन-लूट' कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

इस बार सूरत में मक्खन से भरी मटकियाँ पंखों की रफ्तार से इलेक्ट्रिक सिस्टम द्वारा गोल घुमती हुई लटकाई गई थी जिनका स्विच पूज्यश्री के हाथों में था। ज्यों-ही पूज्यश्री बटन दबाते, पहले मटकियों पर रखे फल उछलते और गति बढ़ने पर मक्खन-मिश्री टपकता। जैसे सीप के लिए स्वाति नक्षत्र की बूँद, वैसे ही शिष्य के लिए 'मटकी-फोड़' कार्यक्रम।

सूरत आश्रम में आयोजित जन्माष्टमी महोत्सव ने तो स्वाति नक्षत्र की बूँद झेलनेवाली सीप की याद दिला दी। फिर भी स्वाति नक्षत्र की बूँद से तो सीप मोती पैदा करती है, यहाँ तो गुरुप्रसाद की बूँद लेकर साधक अपने हृदय में भगवद्भाव पैदा करता है।

पू. बापू के आगामी सत्संग कार्यक्रम

१. पानीपत (हरियाणा) में ज्ञान-वर्षा

दिनांक : ६ से १० सितम्बर १९९५
समय : सुबह ९ से ११ शाम ४ से ६
स्थान : हुड्डा फेस टु, कम्यूनीटी सेन्टर के सामने।
संपर्क फोन : २३६८०, ३००३४.

२. कानपुर (उ.प्र.) में सत्संग-सरिता

दिनांक : १३ सितम्बर १९९५ शाम ३-३० से ५-३०
दिनांक : १४ से १७ सितम्बर
समय : सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३०
स्थान : फूलबाग, कानपुर।
संपर्क फोन : ३१०६३१, २८०४२४, ३६०४०८

३. आगरा में आध्यात्मिक सत्संग-प्रवचन

दिनांक : २२ से २६ सितम्बर १९९५
समय : सुबह ८-३० से १०-३० शाम ४ से ६

दिनांक : २६ सितम्बर को पूज्यश्री का आत्मसाक्षात्कार दिन महोत्सव मनाया जाएगा।

स्थान : संत श्री आसारामजी आश्रम, आगरा-मथुरा रोड़, सिकन्दरा-आगरा।
संपर्क फोन : ३६३३४४, २६२९०३, ३८१८४१, ३९९८९२, ३६११३३

४. नीमच (म.प्र.) में दिव्य सत्संग समारोह

दिनांक : ३० सितम्बर से ३ अक्तूबर १९९५
समय : सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३०
स्थान : हायर सेकन्डरी स्कूल मैदान, नीमच।
संपर्क फोन : २२३०४

५. राजकोट (गुज.) में शरदपूर्णिमा महोत्सव सत्संग-प्रसाद

दिनांक : ६ से ८ अक्तूबर १९९५
स्थान : संत श्री आसारामजी आश्रम, न्यारी डेम के पास, कालावड़ रोड़, राजकोट।
फोन : ९११३५४, ९११३७०.

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से अनुरोध

१. जो साधक भाई रू. २५०/- जमा कराके 'ऋषि प्रसाद' के द्विमासिक संस्करण के आजीवन सदस्य बने हुए हैं, वे चाहें तो अतिरिक्त रू. १५०/- जमा करवाकर इसका मासिक अंक भी प्राप्त कर सकते हैं। कृपया शुल्क भेजते समय अपना सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखकर भेजें।

२. रू. २५/- जमा कराकर वार्षिक सदस्य बने पाठक भाइयों से मासिक संस्करण हेतु अतिरिक्त शुल्क नहीं स्वीकारा जाएगा। वार्षिक सदस्यता की अवधि समाप्त होने पर ही अथवा नये सिरे से वे मासिक संस्करण के सदस्य बन सकते हैं।

३. यदि आपके पते में पिनकोड नहीं दिया गया है अथवा गलत लिखा है तो कृपया पते के लेबल में सही पिनकोड लिखकर भेज देवें। सही पिनकोड पर पत्रिका शीघ्र पहुँचती है।

(पृष्ठ १० का शेष)

बौद्धिक क्षमताएँ एवं सामर्थ्य विकसित होकर भारत गौरव के पथ पर बढ़ सकेगा।

आज आवश्यकता है कि हम पाश्चात्य वानरी तर्ज पर जीवन जीना छोड़कर संतों और शास्त्रों के अनुसार धर्मसंगत, न्यायसंगत जीवन जियें। जिसके जीवन में जितना अधिक धर्म होगा, सत्य होगा, संयम होगा, सत्संग होगा, वह उतना ही अधिक निश्चिन्त, निर्भय व सुखी होगा। इसके विपरीत जीवन बितानेवाला सदैव भयभीत, चिन्तित व दुःखी होगा। अतः मनुष्य को जितना जल्दी हो सके, भारतीय संस्कृति ही अपनाना चाहिए।

ॐ... ॐ... ॐ...

मुलुन्ड (बम्बई) समिति द्वारा अनाथाश्रमों में बालभोज समारोह।

आश्रम के श्री सुरेश ब्रह्मचारी ने जब बड़ौदा व कोटा में पूज्य बापू का संदेश सुनाया तो युवाओं ने अपने घर से लाकर जलाई अश्लील गीतों-फिल्मों की ऑडियो-विडियो कैसेटों की होली।

संत श्री आसारामजी आश्रम (राणापुर, म.प्र.) द्वारा आदिवासी विद्यार्थियों में निःशुल्क नोटबुक वितरण।

गुरुपूर्णिमा पर आगरा आश्रम के उद्‌घाटन अवसर पर १०८ मंगल कलशयात्रा एवं प्रभातफेरी का दृश्य।

गुरुपूर्णिमा महोत्सव, इन्दौर में पूज्यश्री की पीयूषवर्षी वाणी का रसपान करती मालवा की धर्मप्रेमी जनता।

REGISTERED WITH REGISTRAR OF NEWSPAPERS FOR INDIA UNDER NO. 48873/91 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. 207 REGISTRATION NO. GAMC/1132